85 पार

साहित्य के कुंदन

डॉ. कुंदन सिंह परिहार के जन्मदिन के बहाने

www.e-abhivyakti.com का गिलहरी प्रयास

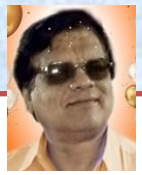

संपादकीय

85 पार डॉ कुंदन सिंह परिहार

25 अप्रैल 2024 को कथाकार, व्यंग्यकार डॉ कुंदन सिंह परिहार 85 साल के हो जाएंगे। वे शतायु हों, जन्मदिन पर उन्हें बधाई और शुभकामनाएं।

85 साल के वे जरूर हो गये हैं पर उनके सितारे बुलंद हैं, आज भी आप सुबह बिना दर्द के उठते हैं, चिलचिलाती धूप में सब्जी लेने और पोस्ट आफिस जाते हैं, कुर्सी में बैठकर खूब कहानी और व्यंग्य लिखते हैं, और कहते हैं आह यह बहुत अच्छा दिन था, और गुजरे दिन को अतिरिक्त धन्यवाद देते हैं। प्रतिदिन सुबह सुबह नात रिश्तेदार और मित्रों की कुशलक्षेम पूछते हैं और पागल दुनिया पर दिल खोलकर हंसते हैं। इस उम्र में जब अधिकांश लोग जीवन से ऊब गये होते हैं ऐसे में परिहार जी मुस्कुराते हुए उन्हें सफल जीवन के पाठ पढ़ाते हैं, और उन्हें आनन्दित होने के गुर बताते हैं और उनका उत्साह बढ़ाने के लिए कहते हैं कि आप दुनिया के लिए भगवान का उपहार हैं। परिहार जी ने अपने जीवन में शरीर में चर्बी नहीं चढ़ने दी और मन में अहंकार को नहीं घुसने दिया।

डॉ कुंदन सिंह परिहार जी से हमारी मुलाकात 40-42 साल पुरानी है और इन वर्षों में हमने कभी किसी प्रकार की दिखावे की प्रवृत्ति नहीं देखी, 42 साल से उनकी कद काठी और चश्मे से झांकती निगाहों में वे शांत संयत धीर गंभीर दिखे। 85 साल की उम्र में भी सीखने की ललक उनमें इतनी तीव्र है कि उन्होंने सोशल मीडिया फेसबुक, वाट्स अप में भी अपनी खासी पहचान बना के रखी है, वह भी तब जब इनकी उम्र के लेखक सोशल मीडिया को कोसते हैं, जुनूनी ऐसे कि मोबाइल के नोटपैड पर सैकड़ों व्यंग्य टाइप कर दो संग्रह प्रकाशित कर चुके हैं। परिहार जी सिद्धांतवादी हैं, स्वाभिमानी हैं, पर उनकी अपनी अलग तरह की धाक है। चेलावाद और गुटबंदी से वे चिढ़ते हैं यही कारण है कि उनकी कलम एक अलग साफ रास्ता बनाकर चलती रही है।

अपने लेखन के बारे में वे कहते हैं-कि भारत जैसे समाज में जहाँ रूढ़ियाँ, अंधविश्वास, अशिक्षा, वैज्ञानिक चेतना का अभाव, निर्बलों का शोषण, पाखंड और स्वार्थपरता व्यापक हैं, वहाँ व्यंग्य लेखक की चुनौतियाँ बड़ी हो जाती हैं। उनके कहानी और व्यंग्य के पात्र अपने आसपास के परिवेश के होते हैं, पात्रों के मन की बात पकड़ने में वे उस्ताद हैं। उनका पात्र क्या सोच रहा है उन्हें पता चल जाता है और उसके अनुसार उनके पात्र अपनी बात कहते हैं। अपने पात्रों के बारे में परिहार जी का कहना है कि "मेरे पात्र बड़े प्यारे हैं कमजोर, निश्छल और भोले भाले हैं, ईमानदार और आसानी से ठगे जाने वाले लोग हैं वे बिना कोई हलचल मचाए दुनिया में आते हैं और बेनाम, खामोशी से बिदा हो जाते हैं। "

परिहार जी लगातार लिख रहे हैं, व्यंग्यम गोष्ठी में हर महीने नया और झन्नाटेदार व्यंग्य लिखकर सुनाते हैं, उनके जन्मदिन के बहाने ई-अभिव्यक्ति पत्रिका के विशेषांक के मार्फत उनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर चर्चा करके हमारे साथी प्रेरणा लें और पूर्ण उर्जा और उत्साह के साथ अच्छी रचनाएं लिखें, इस विशेषांक निकालने का यही उद्देश्य है, परिहार जी की सरलता, सहजता और व्यवहार कुशलता को हमारे साथी आत्मसात करें ऐसी उम्मीद है। विशेषांक में आदरणीय डॉ सेवाराम त्रिपाठी, श्री महावीर अग्रवाल, श्री राजीव शुक्ल, श्री राजेन्द्र सिंह गहलोत, श्री जगत सिंह बिष्ट, श्री अभिमन्यु जैन, श्री रमेश सैनी, श्री रमाकांत ताम्रकार, आदि ने समय पर अपने लेख दिए हम उनके आभारी हैं। व्यंग्य यात्रा अंक ६० से भी कुछ अंश साभार लिए गए उनका भी आभार। डॉ कुंदन सिंह परिहार जी की भी चुनिंदा रचनाएं भी इस विशेषांक में आप पढ़ सकते हैं। विशेषांक की साज-सज्जा से लेकर इसको अच्छा से अच्छा बनाने में श्री हेमन्त बावनकर जी की अथक मेहनत आपके समक्ष है, कृपया अपनी प्रतिक्रियाएं देकर इस विशेषांक का मान बढ़ाने में हमारा सहयोग करिएगा।

सादर

जय प्रकाश पाण्डेय

(सम्पादक ई-अभिव्यक्ति)

jppandey121@gmail.com, मो. 9977318765

अनुक्रमणिका

डॉ. कुन्दन सिंह परिहार 4
कुंदन सिंह परिहार; स्मृतियों के परिसर से 5
[1]लेखकों के महाअधिवेशन में - 'खोया हुआ कस्बा' 9
“परिचर्चा: आज शब्दों का अवमूल्यन और दुरूपयोग हो रहा हैं“ 10
व्यंग्य - फूलों के कद्रदाँ 18
अलख जगाते हमारे साथ कुन्दन सिंह परिहार 21
कहानी - जोकर 27
आलेख - कुंदन सिंह परिहार के कृतित्व पर स्व. ललित सुरजन के विचार 31
दैनिक अखबार पत्रिका द्वारा डॉ कुंदन सिंह परिहार का साक्षात्कार 36
अगली पीढ़ी की फ़िक्र - कुंदन सिंह परिहार 39
व्यंग्य संकलन की समीक्षा - “वह दुनिया और अन्य कहानियां” 43
कहानी और कहानीकार पर सापेक्ष के सम्पादक महावीर अग्रवाल के सवाल 46
डॉ. कुंदन सिंह परिहार के 85वीं वर्षगांठ पर 50
अपनी कहानियों के पात्रों के बारे में परिहार जी कहते हैं.... 52
व्यंग्य - गलती मेरी और भोगना भोगीलाल का 53
नबाब साहब का पड़ोस 57
कहानी - जोग 59
साहित्य के कुंदन : कुंदन सिंह परिहार 64
व्यंग्य विमर्श - आज सामाजिक संदर्भ में व्यंग्य की भूमिका 67
समीक्षा - व्यापक फलक के व्यंग्य 68
व्यंग्य और कहानी की अविरल धारा बहाते डॉ. कुंदन सिंह परिहार 71
मेरी दृष्टि में - परिहार का साहित्यिक संसार 72
लघुकथा - कचरे वाला और नन्दी जी 74
विचारों और मूल्यों को प्राथमिकता 76
लघुकथा - एक छोटी सी भूल 80
डॉ कुन्दन सिंह परिहार : व्यक्तित्व एवं कृतित्व 81
लघुकथा - मज़ाक - डॉ. कुंदन सिंह परिहार 83
व्यंग्य विमर्श - व्यंग्य लेखन में पक्षधरता 88

डॉ. कुन्दन सिंह परिहार

जन्म - 1939 में मध्यप्रदेश के छतरपुर ज़िले के ग्राम अलीपुरा में।

शैक्षणिक योग्यता - एम.ए.(अंग्रेजी साहित्य), एम.ए.(अर्थशास्त्र), पीएच.डी., एल.एल.बी.।

मध्यप्रदेश और महाराष्ट्र के महाविद्यालयों में 40 वर्ष से अधिक तक अध्यापन के बाद 2001 में जबलपुर के गोविन्दराम सेकसरिया अर्थ-वाणिज्य महाविद्यालय के प्राचार्य पद से सेवा-निवृत्त।

रचना-कर्म - 1960 के पश्चात निरन्तर कहानी और व्यंग्य लेखन। लगभग दो सौ कहानियाँ और इतने ही व्यंग्य प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। अब तक सात कथा-संग्रह (तीसरा बेटा, हासिल, वह दुनिया, शहर में आदमी, काँटा, जादू-टोना, खोया हुआ कस्बा)और पाँच व्यंग्य-संकलन (अन्तरात्मा का उपद्रव, एक रोमांटिक की त्रासदी, नवाब साहब का पड़ोस, बेख़ुदी के लमहे, महाकवि उन्मत्त की शिष्या)प्रकाशित। 1994 में म.प्र.हिन्दी साहित्य सम्मेलन के वागीश्वरी सम्मान और 2004 में राजस्थान पत्रिका के सृजनात्मकता पुरस्कार से सम्मानित।

परिहार जी की रचनाओं का प्रकाशन 80 के दशक में तब की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं 'धर्मयुग', 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' से आरंभ हुआ। उस समय की ज़्यादातर पत्रिकाओं और अखबारों ने परिहार जी की रचनाओं को प्रकाशित किया। इनमें व्यवसायिक के अलावा लघु पत्रिकाएं भी थीं। इनमें सारिका, कादंबिनी, पहल, वामा, इंडिया टुडे, कहानियाँ, नई कहानी, साक्षात्कार, पल प्रतिपल, आजकल, नवनीत, कथानक, कथा प्रतिमान. श्री वर्षा, कबीर, मनोरमा, कंचनप्रभा, रूप कंचन, साम्य, समकालीन भारतीय साहित्य, नया ज्ञानोदय, वसुधा, अक्षरपर्व, परिकथा, गवाह, समावर्तन, शुक्रवार, द पब्लिक एजेंडा, व्यंग्य यात्रा, अट्टहास, कहानीकार, व्यंग्य विविधा, अभिप्राय, कथा बिंब, ऋतुचक्र, हिन्दी एक्सप्रेस, रंग चकल्लस, अब, आम आदमी, व्यंग्यम, सेतु, संबोधन, अक्षरा, हास्यम- व्यंग्यम, लफ़्ज़, सापेक्ष, नई गुदगुदी जैसी पत्रिकाएं और नवभारत टाइम्स, हिन्दुस्तान, जनसत्ता, अमृत प्रभात, नई दुनिया, देशबंधु, संडे आब्ज़र्वर, संडे मेल, राजस्थान पत्रिका, अमरावती मंडल, दैनिक जागरण, लोकमत समाचार, सहारा समय, द संडे पोस्ट, अमर उजाला, नवज्योति, नवभारत, नवीन दुनिया, युगधर्म, स्वतंत्र मत, चैनल इण्डिया जैसे समाचार-पत्र शामिल हैं।

परिहार जी ने अपनी लगभग 150 रचनाएँ फेसबुक पर प्रसारित की हैं। पुणे से श्री हेमंत बावनकर द्वारा संचालित ई-अभिव्यक्ति में उनकी 200 से अधिक रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं। आकाशवाणी से भी उनकी अनेक कहानियों का प्रसारण हुआ है।

डॉ. कुंदन सिंह परिहार, 59, नव आदर्श कॉलोनी, गढ़ा रोड, जबलपुर-2 मो.-9926660392, 7999694788

कुंदन सिंह परिहार; स्मृतियों के परिसर से

श्री सेवाराम त्रिपाठी

"आखिर-आखिर एक गम ही आशना रह जाएगा/
और वो गम भी मुझको इक दिन देखता रह जाएगा/
अब हवाएं ही करेंगी रौशनी का फैसला/
जिस दिए में जान होगी वो दिया रह जाएगा/"

(मशहर बदायूंनी)

कुंदन सिंह जी के संग - साथ को स्मरण करते हुए मशहर जी की ये पंक्तियां जेहन में बार- बार गूंजती रहीं। पहली बार जब भाई जयप्रकाश जी ने अपने संकल्प को बताया कि वो परिहार जी पर आधारित एक अविस्मरणीय काम करना चाहते हैं तो बेहद खुशी हुई कि इस घनघोर लंपट युग में अभी भी अच्छा काम करने वालों की कद्र करने वाले पारखी लोग हैं। ज़ाहिर है कि किसी भी आदमी के व्यक्तित्व और रचनात्मकता का विकास एक दो दिन की कहानी नहीं है बल्कि उसे परिस्थितियां, वास्तविकताएं कैसे गढ़ती हैं। कितनी बार उसकी पीट पाट होती है। इसे भी देखना चाहिए। अपने परिवार और समाज को साथ लेकर चलने वाला कैसे अपना रास्ता अख़्तियार करता है। लेखक का व्यक्तित्व कैसे छन - छनकर अपनी जगह बनाता है। बहरहाल कुंदन सिंह जी पर बात करते हुए जनाब कृष्ण बिहारी नूर के दो शेर पढ़ें - "आईना ये तो बताता है के मैं क्या हूं लेकिन /आईना इस पे है खामोश के क्या है मुझ में/ अब तो बस जान ही देने की है बारी ऐ नूर/ मैं कहां तक करूं साबित के वफ़ा है मुझमें/"

कुंदन सिंह जी को मैं मात्र लेखक के रूप में नहीं देखता। वे एक सहज, सरल और अकृत्रिम इंसान हैं। कोई दिखावा नहीं कोई तामझाम नहीं और न गर्व की पालकियों में बैठने की कोई चाहत है उनमें। वे अपने व्यक्तित्व और कृतित्व में एक ही तरह के हैं। उनकी कथनी - करनी में कोई अंतर मुझे कभी नहीं दिखता। भीतर बाहर एक जैसे। यह तो याद नहीं पड़ता कि पहली बार उनसे कब मिला था। सैकड़ों मुलाकातें हैं। गपशप हैं और चर्चाएं हैं। किनको भूलूं और किन - किनको याद करूं। वे मूलतः छतरपुर के रहने वाले हैं। छतरपुर का आदमी कैसे छतरपुर से जबलपुर आया और ऐसा क्या देखा कि बस यहीं का होकर रह गया। जबलपुर ने कैसे उन्हें अपनी भुजाओं में भर लिया या किस राग ने उन्हें आकर्षित किया वे उसकी मोहनी में यहीं के होकर रह गए।

उन्नीसवीं शताब्दी का आठवां दशक प्रगतिशील लेखक संघ के विकास की सौगात लेकर आया। बिहार के गया अधिवेशन 1975 के बाद का नया उठान, नया जोश, जुनून, उत्साह, उमंग, उल्लास और हौसले का रहा है। उसके कुछ समय बाद सतना में प्रगतिशील लेखक संघ का पहला प्रांतीय अधिवेशन हुआ था। बड़े नामी गिरामी लोग आए थे। उसमें उर्दू के कैसर शमीम, हिंदी के विजेंद्र, स्वयं प्रकाश, काशीनाथ सिंह, उदय प्रकाश, शिवमंगल सिंह सुमन और मोहन श्रोत्रिय की याद है मुझको। परसाई मुख्य भूमिका में थे। ये प्रलेस के सहज उठान के यादगार दिन थे। प्रलेस का प्रभाव अकूत था। हरिशंकर परसाई, श्याम सुन्दर मिश्र, ज्ञानरंजन, कमला प्रसाद और मलय की प्रगतिशील लेखक संघ के विस्तार की अंनत संभावनाएं और योजनाएं थीं। परसाई जी के कुशल नेतृत्व में प्रलेस ताबड़तोड़ कार्यक्रम कर रहा था। उसी दौरान न जाने कितने लोग प्रलेस से जुड़े। उसमें यूं तो कई हैं लेकिन उसी सूची में कुंदन सिंह जी जैसा भावुक, कर्मठ, सोचने - समझने और विचार करने वाला प्यारा आदमी मिला। चौकन्ना और सब कुछ परखने वाला। पता नहीं क्या-क्या थाहता था और क्या - क्या ठोंकता बजाता था। अपने आप में मगन लेकिन प्रगतिशील मूल्यों से लबालब। धीरे- धीरे उसकी सामाजिकता की जड़ें उसकी लेखकीय आस्था से संबद्ध होती गईं। कुंदन सिंह जी बिना किसी अतिरिक्त चकाचौंध में फंसे लिखते रहे तो लिखते रहे।

सच मानिए मैं प्रगतिशील लेखक संघ से 1975 से संबद्ध हूं। न किसी पद के लिए और न किसी चीज़ को पाने के लिए। दिली इच्छा से जुड़ गया तो बस जुड़ गया। आज भी अटूट विश्वास और रिश्ता उससे बना हुआ है। परसाई जी से न जाने कितनी बार मिला हूं और न जाने कितनी बातें की हैं। लेकिन इसके कोई रिकॉर्ड नहीं है मेरे पास। उसी तरह ज्ञानरंजन, श्याम सुन्दर मिश्र और अन्य के साथ। कहना ज़रूरी है कि प्रगतिशील लेखक संघ एक बहुत बड़ा परिवार है। हमारी दोस्ती मात्र लेखक से नहीं होती बल्कि उसके समूचे परिवार से हम रिश्तों में होते हैं। यह रिश्ता केवल लेखक के जीवित रहते भर नहीं होता बल्कि उसके न रहने पर उसके परिवार से भी अटूट होता है। इस वर्ष हमारे बीच से मलय जी और धनंजय वर्मा विदा हुए लेकिन हम उनके परिवार के साथ हैं। उनका परिवार हमारा परिवार है।

यह दौर तो ऐसा है कि अपराधी, हत्यारा, तड़ीपार और नामी गिरामी भर कोई हो जाए तो लोग फ़ोटो शूट करवा कर रख लेते हैं और उसे अपनी छाती में चिपकाए प्रचार प्रसार में घूमते रहते हैं। खैर। मैं रिश्तों में कभी कोताही नहीं बररता। कुंदन सिंह जी मुझसे उम्र में लगभग 13 वर्ष बड़े हैं। देखता हूं कि 50 वर्षों से ज्यादा के वर्षो से रिश्तों में रहते हुए भी कुंदन सिंह जी का व्यवहार बड़ा सादा और सुलझा हुआ है। इन पचास- पचपन वर्षों में न जाने क्या-क्या बदल गया है और न जाने क्या-क्या बदल रहा है। भूमिकाएं बदल रही हैं। पहले के कुंदन सिंह जी को याद करता हूं तो वही भोला - भाला बांका नौजवान, दिल खोलकर मिलनेवाला फिर भी सिमटा हुआ सिकुड़ा हुआ मिलनसार आदमी। अब भी हैं वही बाल पक चले हैं। शरीर में झुर्रियां कब्ज़ा कर रही हैं। 85 वर्ष

के होने जा रहे हैं लेकिन उनकी मिलनसारिता में उनके हुलास में उनकी आत्मीयता में कहीं कोई फ़र्क नहीं आया है। वे ज़मीन के आदमी हैं कोई हवा हवाई नहीं। वही नमी है उनमें और बड़े लेखक होने के बावजूद उनमें कोई गुमान नहीं पनपा है। यह कोई छोटी बात नहीं है। इसके मायने बहुत हैं और इसके जीवंत संदेश भी अनेक हैं। समझने वाले समझ गए जो न समझे वे अनाड़ी हैं। लोग तो एकाध किताब छपने के बाद आसमान में उड़ने लगते हैं। कहां-कहां से स्वार्थ सिद्धि की स्थितियां जोड़कर अपनी क़िताब की आलोचनाओं का ढेर लगा देते हैं अपने लिखे पर। लेकिन ये एक ऐसे कुंदन सिंह परिहार हैं जिसने कभी भी ऐसा नहीं किया। जहां तक मेरी जानकारी है। सचमुच ऐसे ही लोग खरा कुंदन यानी चौबीस कैरेट सोना होते हैं। सहजता और सादगी ही उनकी खूबसूरती है। वे कभी हाई प्रोफाइल आदमी नहीं रहे और न कभी नकली आदमी रहे, न कोई लल्लो की और न कोई चप्पो की। इन सबको वे दूर से ही हमेशा जय रामजी की करते रहे। एक साधारण इंसान उनके भीतर बसता है। वे बड़ों का तो सम्मान करते ही हैं अपने हमउम्रों का अपने से छोटों का भी ख्याल रखते हैं और मान करते हैं जो इस दौर में अब लगभग दुर्लभ हो चला है। सोचिए जो आदमी कॉलेज में प्राध्यापक रहा हो प्राचार्य रहा हो। कई किताबों का लेखक हो वह न तो कोई घमंड पालता और न लंबी चौड़ी हांकता बल्कि हमेशा संतुलित व्यवहार करता है। मेरे लिए इस कुंदन के अर्थ बहुत व्यापक हैं। ये प्रगतिशील आंदोलन के स्तंभ रहे हैं और आगे भी इनका उजास हमें मिलता रहेगा और महती भूमिका होगी। कुंदन सिंह कहानीकार भी हैं और व्यंग्य लेखक भी। वे जो भी लिखते हैं वह व्यंग्य मय हो जाता था। शायद परसाई जी की सोहबत का असर हो। या जबलपुर की खाद और हवा पानी का असर हो। लेकिन कुंदन जी की उर्वर मिट्टी में यह गुण है। ऐसा मैं मानता हूं। जो भी हो वही कुंदन सिंह परिहार को सामर्थ्यवान और अर्थवान भी बनाता है। मुझे याद आया कि वाट्स अप ग्रुप के एक समूह व्यंग्यधारा में

रमेश सैनी के संचालन में परसाई जी पर एक गोष्ठी हुई थी, परिहार जी ने उसमें परसाई जी के बारे में अपने अनुभव साझा किए थे। परिहार जी के अभी तक सात कथा-संग्रह (तीसरा बेटा, हासिल, वह दुनिया, शहर में आदमी, काँटा, जादू-टोना, खोया हुआ कस्बा) एवं पांच व्यंग्य-संकलन (अन्तरात्मा का उपद्रव, एक रोमांटिक की त्रासदी, नवाब साहब का पड़ोस, बेख़ुदी के लमहे, महाकवि उन्मत्त की शिष्या)प्रकाशित हो चुके हैं।

हरिशंकर परसाई ने उनके व्यंग्य संग्रह अंतरात्मा का उपद्रव का फ्लैप लिखा था - “कुन्दन सिंह परिहार की इन छोटी-छोटी कहानियों में हमारे सामाजिक जीवन का व्यंग्य और विनोदमय सर्वेक्षण है। परिहार के पास तीखी नज़र और प्रगतिशील दृष्टिकोण है। वे राजनीति, समाज-सेवा, शिक्षा, संस्कृति, प्रशासन आदि के क्षेत्रों की विसंगतियों को कुशलता से पकड़ लेते हैं। समाज में जो पाखंड, मिथ्याचार, ढोंग, स्वार्थपरता, भ्रष्टाचार, दोमुँहापन, झूठ आदि चलते रहते हैं, वे परिहार की दृष्टि से बचे नहीं रह सके। वे इनके प्रतिनिधि चरित्रों को भी खोज लेते हैं। बहुत सरल भाषा और

बनावटहीन सहज शैली में लिखी गई ये कथाएं केवल मनोरंजन नहीं करतीं, बल्कि जीवन की तीखी आलोचना प्रस्तुत करती हैं। यह एक दर्पण है जिसमें हमारे जीवन का विकृत चेहरा दिखता है।"

परसाई जी ने ये बातें कुंदन सिंह जी के व्यक्तित्व और रचनात्मकता का परीक्षण करते हुए कही थी। परिहार जी व्यंग्य के सिलसिले में गहराई से सोचते रहे हैं और प्रतिक्रिया भी व्यक्त करते रहें हैं। उनके शब्द हैं-" व्यंग्यकार समाज में सुधार के लिए ही लिखता है। उसमें समाज के चेहरे की विकृतियों को देखने की विशेष दृष्टि होती है। वह समाज के सामने दर्पण रखता है कि समाज उसमें झांके और अपने चेहरे के ऐंडे - बैंडेपन को पहचाने और सुधारे.. व्यंग्यकार का लेखन उतना ही सार्थक होता है जितना वह अपने से बाहर निकलकर व्यापक समाज से जुड़ता है. छोटे-मोटे महत्वहीन विषयों पर अपनी प्रतिभा नष्ट करने से कुछ हासिल नहीं होता."(आज सामाजिक संदर्भ में व्यंग्य की भूमिका)

इतना कालखंड गुज़र जाने के बाद कुंदन सिंह जी के बारे में, उनकी भूमिका और निष्ठाओं को उसी गर्म जोशी से सहेजने का उपक्रम कर रहा हूं। ख्वाहिश है कि वे हमेशा सक्रिय रहें और स्वस्थ सानंद और हमारे परिवारी बने रहें और प्रगतिशील जीवन मूल्यों के लिए एक अजेय योद्धा की तरह हमारे साथ हों। अग्रज कुंदन सिंह जी को आत्मीय शुभकामनाएं।

22 अप्रैल 2024

श्री सेवाराम त्रिपाठी, व्यंग्यकार एवं आलोचक, रजनीगंधा-6, शिल्पी उपवन, अनंतपुर, रीवा (म.प्र.) - 486002

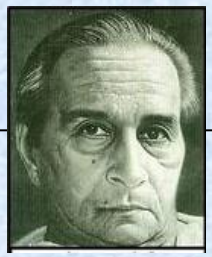

हरिशंकर परसाई की दृष्टि में परिहार

परिहार के पास तीखी नजर और प्रगतिशील दृष्टीकोण हैं। वे राजनीति, समाजसेवा, शिक्षा, संस्कृति, प्रशासन आदि के क्षेत्रों की विसंगतियों को कुशलता से पकड़ लेते हैं। समाज में जो पाखंड, मिथ्याचर, ढोंग, स्वार्थपरता, भ्रष्टाचार, दोमुँहापन, झूठ आदि चलते रहते हैं, वे परिहार की दृष्टी से बचे नहीं रह सके। वे इनके प्रतिनिधि चरित्रों को भी खोज लेते हैं। बहुत सरल भाषा और बनावटहीन सहज शैली में लिखी गयी ये कथाएं केवल मनोरंजन नहीं करती, बल्कि जीवन की तीखी आलोचना प्रस्तुत करती हैं। यह एक दर्पण हैं जिसमें हमारे जीवन का विकृत चेहरा दिखता हैं।

लेखकों के महाअधिवेशन में - 'खोया हुआ कस्बा'

20 से 22 अगस्त, 2023 को जबलपुर में प्रगतिशील लेखक संघ का 18वां राष्ट्रीय अधिवेशन आयोजित हुआ, जिसमें देश भर से आए पांच सौ से अधिक प्रतिनिधियों की भागीदारी हुई। 20अगस्त को उदघाटन सत्र में परसाई जी पर केंद्रित अट्टहास पत्रिका का विमोचन हुआ, 21अगस्त को विचार विमर्श सत्र के दौरान ख्यातिलब्ध व्यंग्यकार, कथाकार, डॉ कुंदन सिंह परिहार द्वारा लिखित कहानी संग्रह 'खोया हुआ कस्बा' का विमोचन देश भर से जुटे नामी-गिरामी साहित्यकारों की उपस्थिति में हुआ। कार्यक्रम का संचालन आकाशवाणी दूरदर्शन के रिट. डीडीजी श्री राजीव शुक्ल ने किया एवं मंच पर देश के दिग्गज साहित्यकार सर्वश्री नरेश सक्सेना, प्रलेस के राष्ट्रीय महासचिव श्री खुखदेव सिंह सिरसा, श्री विभूति नारायण राय, नथमल शर्मा, श्री वीरेन्द्र यादव, कुलदीप सिंह दीप, श्री प्रियदर्शन मालवीय, जैसे नामी-गिरामी लेखक उपस्थित थे। महान साहित्यकार और साहित्य के संसार में जबलपुर की सर्वाधिक प्रखर पहचान हरिशंकर परसाई के जन्मदिन और जन्मशती के साथ यह सम्मेलन रांगेय राघव, शंकर शैलेन्द्र, हबीब तनवीर, मृणाल सेन और गीता मुखर्जी की याद को भी समर्पित था।

"परिचर्चा: आज शब्दों का अवमूल्यन और दुरूपयोग हो रहा हैं"

श्री रमेश सैनी

श्री जयप्रकाश पाण्डेय

रमेश सैनी - परिहार जी, आपको लिखने का जुनून कब से हुआ ?

कुंदन सिंह परिहार - मेरी माँ को पढ़ने का शौक था और उन्हीं के कारण घर में किताबों और तब की प्रसिद्ध पत्रिकाओं का अच्छा खासा संग्रह था, जिसका जिक्र मैंने अपने आत्मकथ्य में किया हैं। तब वृन्दावन लाल वर्मा की रोचक लेखन- शैली और चरित्र-चित्रण ने मुझे बहुत प्रभावित किया। देवकीनंदन खत्री पाठक को दूसरी दुनिया में ले जाते थे। उनके द्वारा वर्णित तिलिस्म आज सच हो रहे हैं। शरत की कहानियों और उपन्यासों ने भी बहुत प्रभाव डाला। अजीम बेग चगताई, शौकत थानवी, शफीकुर्रहमान, जी.पी. श्रीवास्तव जैसे लेखकों को पढकर शायद हास्य और व्यंग्य का बोध जागा। इसी वातावरण में लिखने की इक्छा धीरे - धीरे जागी।

मेरा मानना हैं की लेखन-क्षमता प्रकृति की देन हैं, इसलिए लेखक को अपने को फन्ने खां न समझ कर विनम्र होना चहिये। देश में कितने ही उच्च शिक्षित लोग हैं लेकिन वे कहानी - कविता नहीं लिख सकते। चेखव ने लिखा हैं कि प्रकृति - प्रदत्त प्रतिभा को मेहनत से संवारना पड़ता हैं, अन्यथा वह नष्ट हो जाती हैं।

रमेश सैनी - आपने साहित्यिक पत्रिकाओं के अलावा जासूसी उपन्यास भी पढ़े ?

कुंदन सिंह परिहार - सभी प्रकार की पुस्तकें पढ़ी। राबर्ट ब्लैक और अमेलिया कार्टर के कई उपन्यास हमारे पास थे। देवकीनंदन खत्री के उपन्यासों में भी ऐयार होते थे, जो जासूस ही थे।

रमेश सैनी - आपने लिखना शुरू कैसे किया ?

कुंदन सिंह परिहार - लेखक के लिए जो कल्पनाशीलता और परकाया - प्रवेश की क्षमता जरुरी हैं वह शायद मुझमें थी। किसी घटना को देखकर उसकी परिणति जानने की उत्सुकता होती थी। संवेदनशीलता भी मन में रही हैं। इसी के चलते दूसरों के लिए सामान्य घटनाओं में भी नया अर्थ ढूंढ़ने की प्रवृत्ति पैदा हुई। काफी पढ़ने के कारण भाषा में रवानी आयी। हास्य और व्यंग्य का बोध

भी लेखकों को पढ़ने से पैदा हुआ। इस सब के चलते कॉलेज के दिनों से ही लेखन शुरु हो गया। कहानियां पहले भावुकतापूर्ण थी, फिर जबलपुर में ज्ञानरंजन जी और अन्य साथियों के संसर्ग में उनमें प्रौढ़ता आयी।

जयप्रकाश पांडेय - आज के समय में शब्दों और धारणाओं के दुरूपयोग में लोगों की दिलचस्पी बढ़ रही हैं। समाज में विवेक और तर्कबुद्धि की हैसियत दिनोंदिन कम होती जाती हैं। भय हवा में घुलता जा रहा हैं। बुद्धिजीवी मात्र के प्रति घृणा का संचार किया जा रहा हैं। तब ऐसे समय में क्या व्यंग्यकार की कलम राजनीति और समाज को दिशा देने में नाकाम हो रही हैं ?

कुंदन सिंह परिहार - यह दुःख की बात हैं कि आज शब्दों का अवमूल्यन और दुरूपयोग हो रहा हैं। राजनीति में यह विशेष तौर से देखने को मिलता हैं। आज की राजनीति ने सिद्धांतों और नैतिकता से अपना दामन छुड़ा लिया हैं। समाज पर भी इस प्रवृत्ति का असर हो रहा हैं। अंधविश्वास को जानबूझकर बढ़ावा दिया जा रहा हैं क्योंकि अंधविश्वास को बहलाना, बहकाना आसान होता हैं। बुद्धिजीवी को खतरनाक समझा जाता हैं क्योंकि वह संदेह करता हैं और सवाल पूछता हैं। इसलिए "बुद्धिजीवी" शब्द को गाली का दर्जा दे दिया गया हैं। इन्हीं प्रवृत्तियों के कारण भविष्य के बारे में भय का संचार होता हैं। जाहिर हैं कि व्यंग्यकार के लिए आज चुनौती बहुत बड़ी हैं, लेकिन लगता नहीं की इस संकट को आज के व्यंग्यकार ठीक से समझ पाये हैं। कुछ ऐसे भी हैं जो देखकर भी आँखें मूंदे हैं, क्योंकि देखना असुविधाजनक हैं।

रमेश सैनी - आपका बचपन सामंती परिवेश में बीता। उसके बारे में बतायें।

कुंदन सिंह परिहार - सामंती परिवार में जन्म लेने के बावजूद मुझ पर सामन्ती रंग नहीं चढ़ा। अन्याय और शोषण के प्रति मन में सदैव वितृष्णा रही। कारण शायद यह हो रहा कि अपने गांव अलीपुरा (जि. छतरपुर, म.प्र.) के शासकों को गढ़ी में जन्म लेने के बावजूद 1947 के बाद हम गढ़ी से बाहर आ गये और परिवार की आर्थिक स्थिति बहुत कमजोर हो गयी। रियासतों के जमाने में बचपन में काफी जुल्म, अन्याय और सामान्य आदमी का अनादर देखा, जिस कारण इन प्रवृत्तियों के प्रति मन में अरुचि पैदा हुई। ऐसे सामन्त भी देखे जो परपीड़ा से मनोरंजन प्राप्त करते थे।

रमेश सैनी - आपने शुरू में सामाजिक परिवेश पर कहानियां लिखीं जो अपने समय की धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान आदि बड़ी पत्रिकाओं में छपी और चर्चित भी रहीं, फिर व्यंग्य पर हाथ आजमाने का विचार कैसे आया ?

कुंदन सिंह परिहार - सैनी जी, मैंने कहानी और व्यंग्य एक साथ ही लिखना शुरू किया। 1972 - 73 के निकट 'सारिका' और 'धर्मयुग' में मेरी कहानियाँ छपीं, तभी 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' ने व्यंग्य छापा। तब से अब तक दोनों विधाओं में एक साथ लिख रहा हूँ। ध्यान देने की बात यह हैं कि मेरे प्रकाशित व्यंग्यों की संख्या कहानियों से ज्यादा हैं। अब तक लगभग 150 कहानियाँ और 200 से अधिक व्यंग्य प्रकाशित हुए हैं। अब तक पाँच कहानी - संग्रह प्रकाशित हुए, किन्तु स्थितियों के कारण व्यंग्य - संग्रह 1982 - 83 के बाद 2018 में ही प्रकाशित हो सका। तीसरा व्यंग्य - संग्रह इस साल मई में आया।

रमेश सैनी - क्या आपके अनुभव से साहित्य जगत में व्यंग्य को कम महत्त्व मिलता रहा हैं ?

कुंदन सिंह परिहार - मेरे अनुभव से पत्रिकाओं में कहानियों की तुलना में व्यंग्य को कम महत्त्व मिलता रहा हैं। आलोचक कहानी के बरक्स व्यंग्य को कम आंकते रहे हैं। कुछ मित्रों ने मुझे सलाह दी थी की में व्यंग्य न लिखूं, लेकिन मैंने दोनों विधाओं को समान महत्त्व दिया। कई बार व्यंग्य कहानी की तुलना में ज्यादा संतोष देता हैं उसमे कही गयी बात स्पष्ट रहती हैं। व्यंग्यकार यदि रचना को ज्यादा संवारने लग जाए तो उसका उद्देश्य धूमिल हो सकता हैं। दोनों विधाओं के अपने अलग - अलग उद्देश होते हैं। इसे परसाई जी जैसे लेखकों की रचनाओं से भली - भांति समझा जा सकता हैं।

रमेश सैनी - आप अपने विषय का चयन कहानी और व्यंग्य के लिए कैसे करते हैं? क्या आपने एक ही विषय पर कहानी और व्यंग्य लिखा हैं?

कुंदन सिंह परिहार - सैनी जी, यह घटना की प्रकृति पर निर्भर होता हैं कि उसे किस विधा में प्रस्तुत किया जाए। जहाँ घटना से सहानुभूति, संवेदना, प्रेरणा या आदर्श उपजे वहाँ उसे स्वभावत: कहानी का रूप देने की इच्छा होती हैं। इसके विपरीत जहाँ पात्रों और घटनाओं को देखकर क्रोध या घृणा उत्पन्न होती हो, जहां पाखंड, दोमुहांपन, अन्याय, चाटुकारिता दिखायी पड़ती हैं वहां मन व्यंग्य की तरफ झुकता हैं। वैसे में अपने ज्यादातर व्यंग्य कहानी के रूप में लिखता हूँ। फिर भी

विधाओं के बीच अनिर्णय की स्थिति पैदा हो सकती हैं, जैसे मैंने एक अखबार को व्यंग्य भेजा था, लेकिन उन्होनें उसे कहानी का उप शीर्षक देकर छापा। कारण यह हैं कि अनेक कहानियों में व्यंग्य होता हैं, लेकिन शुद्ध व्यंग्य की रचना में उसकी मात्रा आधिक होती हैं। ज्ञानरंजन जी की कई कहानियों में तीखा व्यंग्य हैं, किन्तु कथा - तत्व आधिक होने से वे कहानी के श्रेणी में आती हैं। परसाई जी के अनेक व्यंग्य कहानी - शैली में हैं। इसलिए दोनों विधाओं के बीच स्पष्ट विभाजक रेखा खींचना आसान नहीं हैं।

रमेश सैनी - परसाई जी और उनके समकालीन व्यंग्यकार तत्कालीन सामाजिक कुरीतियों और कमजोरियों पर निर्भीक होकर लिखते थे और उसके परिणाम भोगने के लिए भी तैयार रहते थे। आज स्थितियां कई मायनों में बदतर हैं, फिर भी लेखक बचकर लिख रहे हैं। ऐसा क्यों ?

कुंदन सिंह परिहार - यह महत्वपूर्ण सवाल हैं। पहले की तुलना में लेखक बचकर लिख रहा हैं क्योंकि आज समाज ज्यादा असहिष्णु हो गया हैं। विचारों और आस्था का विभाजन पहले की अपेक्षा तीखा हुआ हैं और राजनीतिज्ञों ने अपने स्वार्थों के चलते इसे खूब हवा दी हैं। शिक्षा की फजीहत के चलते लेखक के दृष्टीकोण को समझने वाले कम हैं। कोई दूसरे की सुनना नहीं चाहता। सोशल मीडिया आज बहुत महत्वपूर्ण हो गया हैं। कोई विरोधी या प्रगतिशील विचार रखते ही सुनियोजित ट्रोलिंग शुरू हो जाती हैं जो कई बार मर्यादा का अतिक्रमण कर जाती हैं। इसलिए कई बुद्धिजीवी सोशल मीडिया को त्याग चुके हैं। यह लेखक को निर्णय करना होगा कि वह अपने लेखन के लिए कितनी दूर जीने के लिए और कितना 'रिस्क' लेने के लिए तैयार हैं। भारतेन्दु, कबीर, परसाई जैसे लेखक अपनी कलम के लिए खड़े हुए और उन्होंने सब तरह के खतरे उठाये। यह इस बात पर निर्भर हैं कि लेखक के भीतर कितनी आग और बैचेनी हैं। परसाई जी की आर्थिक स्थिति बहुत साधारण थी, लेकिन उनके भीतर की बेचैनी उन्हें बड़े ताकतवर लोगों के विरुद्ध खड़ा कर देती थी। लेखक को समझना चहिये कि जब वह व्यवस्था पर प्रहार करेगा तो व्यवस्था उसके विरुद्ध अपनी ताकत का उपयोग करेगी ही। व्यवस्था कोई संत नहीं हैं जो एक गाल पर थप्पड़ खाकर दूसरा गाल प्रस्तुत कर दे। इसलिए व्यवस्था के विरुद्ध खड़े होने वाले लेखक के लिए शिकायत करने का कोई कारण नहीं होता।

यह स्पष्ट हैं की सुरक्षित लेखन आत्मसंतुष्ट और यश - पुरुस्कार तो प्राप्त कर सकता हैं, किन्तु इससे उसके लेखन का उद्देश्य पूरा नहीं होता। व्यंग्य - लेखन समाज में सुधार और परिवर्तन के

लिए होता हैं, लेखक के महिमा - मंडन के लिए नहीं। फिर भी जो जितनी दूर तक जा सके, उसे उसका श्रेय मिलना चाहिए।

रमेश सैनी - परिहार जी, इधर एक सवाल उठता हैं कि आज अनेक मानवीय सरोकार हैं, जैसे भूख, महंगाई, स्त्री पर अत्याचार, माबलिचिंग, जिन पर व्यंगकार नहीं लिख रहा हैं। इसके क्या कारण हैं ?

कुंदन सिंह परिहार - आज पूंजीवाद ने आदमी की दृष्टी को बाँध दिया हैं। उसे अपने आसपास की चकाचौंध वाली दुनिया के पार देखने की फुर्सत नहीं हैं। इस दुनिया से बाहर खड़े वंचित और उपेक्षित लोगों को देखने के लिए जैसी संवेदना चाहिए वह आज की दुनिया में पनप नहीं पाती। टेक्नालॉजी आदमी की घर से बाहर निकलने की जरुरत को खत्म करती जाती हैं। अब घर से निकले बिना ही जिन्दगी चल रही हैं, तो दूसरों की जिन्दगी में क्यों और कैसे झांका जाए ? आज का युग आत्मप्रचार और आत्मस्तुति का हैं। परसाई जी ने जिस बैचेनी का जिक्र किया था वह आज कम देखने को मिलती हैं। आत्मप्रचार की भूख आज लेखक को दयनीय और हास्यास्पद बना रही हैं। व्यंग्य - लेखन 'जो घर फूंके आपनो, चले हमारे संग' वाला कठिन मार्ग हैं, जिस पर चलने के लिए बहुत आग और बहुत साहस चाहिए।

जयप्रकाश पांडेय - लेखक के विचारों, आदर्शों और मान्यताओं की ऊचाइयों तक यदि समाज न पहुंचे तो दोषी लेखक को माना जाएगा या समाज को ?

कुंदन सिंह परिहार - किसी को भी दोषी मानना कठिन हैं। यदि समाज पिछड़े सोच वाला, अंधविश्वास, वैज्ञानिक सोच से हीन हैं, तो उसके पीछे कुछ स्थितियों होती हैं। समाज में उसे शिक्षित करने वाले लोग जितने सक्रिय होते हैं उतने ही सक्रिय उसे अशिक्षित रखने वाले होते हैं, क्योंकि अशिक्षित व्यक्ति को कहीं भी हांका जा सकता हैं। लेखक को दोषी इसलिए नहीं ठहराया जा सकता क्योंकि उसके पास समाज, विशेषकर अशिक्षित समाज से जुड़ने का कोई जरिया नहीं होता। इसलिए कई लेखक लेखन से बाहर निकलकर जनआन्दोलन से जुड़ते हैं।

रमेश सैनी - परिहार जी, कभी - कभी मैं सोचता हूँ कि आज जैसा लेखक लिखता हैं वैसा जीता नहीं हैं, न ही दिखता हैं।

कुंदन सिंह परिहार - अन्य विधाओं की तुलना में एक व्यंगकार के लिए यह जरुरी हैं कि वह जैसा लिखता हैं वैसा दिखे, क्योंकि वह दूसरों की बुराइयां देखता हैं, उन पर आक्षेप करता हैं। अन्यथा उसकी स्थिति पर उपदेश कुशल बहुतेरे वाली हो जाएगी। सार्थक लेखन के लिए कहे पर चलना अनिवार्य हैं। गांधी जी की नैतिक शक्ति का आधार यह था कि उनके विचार, वचन और कर्म में भेद नहीं था। प्रदर्शनप्रियता, प्रसिद्धि की ललक, चाटुकारी लेखक की प्रतिभा को नष्ट करते हैं। चेखव के अनुसार सच्ची प्रतिभा प्रकाश से दूर, भीड़ के बीच रहना पसंद करती हैं। वह प्रदर्शन की परवाह नहीं करती। व्यंग्य - लेखन वस्तुतः समाज की बुराइयों के विरुद्ध एक आन्दोलन हैं। एक स्थिति आती हैं जब लेखक कागज रंगना अपर्याप्त मानकर सीधे जनआन्दोलन से जुड़ जाता हैं। विश्व के कई लेखकों ने अपनी कलम की रक्षा में देश निकाला तक झेला। अपने देश में प्रेमचन्द, शरतचन्द्र, यशपाल, महाश्वेता देवी, परसाई जनआन्दोलन से जुड़े और लोकप्रिय हुए। ऐसे लेखकों को समाज में ज्यादा सम्मान मिलता हैं, लेकिन अभी ऐसे लेखक कम दिखायी पड़ते हैं।

रमेश सैनी - इसके पीछे कारण क्या हैं ?

कुंदन सिंह परिहार - यह आपके भीतर विरोध के स्तर पर निर्भर होता हैं। एक आदमी अपने सामने होते अन्याय को देखकर बुदबुदा कर रह जाता हैं, दूसरा अपना विरोध जाहिर करता हैं लेकिन झगड़ें - झांसे में नहीं फसता, तीसरा अपनी फिक्र छोड़कर अन्याय करने वाले से जूझ जाता हैं। दूसरों को बचाने में कई लोग अपनी जान दे देते हैं। यह लेखक के ऊपर हैं कि वह अपने जीवन मूल्यों के लिए कितनी दूर तक जाता हैं।

जयप्रकाश पांडेय - दुनिया के चर्चित, लोकप्रिय, महान लेखक लेव टालस्टाय की विश्वविख्यात कृति 'वार एंड पीस' को लेकर पिछले दिनों से विवादास्पद बयानबाजी और बहस चल रही हैं। क्या आप मानते हैं कि आज के समय में इस महान उपन्यास के विचारों की समकालीनता भारतीयों के लिए बढ़ती जा रही हैं ?

कुंदन सिंह परिहार - यह विवाद व्यर्थ की गलतफ़हमी के कारण उत्पन्न हुआ। टालस्टाय की पुस्तक अदालत में प्रस्तुत जरूर हुई थी लेकिन संबंधित जज ने उस पर कोई टिप्पणी नहीं की थी। 'युद्ध और शांति' विश्व की धरोहर हैं। टालस्टाय सर्वकालीन और सर्वदेशीय लेखक थे। उनका लेखन सब भौगोलिक सीमाएं तोड़ने के अतिरिक्त काल का अतिक्रमण करता हैं। उसका मूल्य और महत्त्व कभी ख़त्म नहीं होगा।

टालस्टाय ने अपनी कहानियों और उपन्यासों में उच्चतम जीवन - मूल्यों की पैरोकारी की थी। इसलिए गाँधी जी भी उनके भक्त थे और उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में 'टालस्टाय फॉर्म' की स्थापना की थी। 'युद्ध और शान्ति' 1812 के नेपोलियन - रूस युद्ध की पृष्ठभूमि में लिखा गया था। इसी पुस्तक में टालस्टाय ने लिखा, सुख के क्षणों को पकड़ों। प्रेम करो और प्रेम प्राप्त करो। दुनिया की यही एक वास्तविकता हैं, बाकी सब मूर्खता हैं। ' अपने दूसरे महान उपन्यास 'अन्ना केरेनिना' के बाद वे बुद्ध और जीजस के प्रभाव में आ गये थे। उनकी दिलचस्पी हमेशा जीवन की समझ और उसके औचित्य में रही। करीब दस साल वे सेना में रहे थे जिसे वे अपने जीवन का सबसे निकृष्ट समय मानते थे। उन्होंने 'कनफेशंस' में लिखा, मैं उन वर्षों को आतंक, घृणा और ह्रदयविदारक पीड़ा अनुभव किये बिना याद नहीं कर सकता। 'सामन्त होते हुए भी उन्हें अपने किसानों और गरीबों के प्रति सहानुभूति थी और वे हर संभव उनकी मदद करते थे'।

टालस्टाय के लेखन की प्रासंगिकता भारत समेत सभी शान्तिप्रिय देशों में रही हैं। उनकी 'आदमी को कितनी जमीन चाहिए' जैसी कहानियाँ पढ़ने वालों की जबान पर हैं। दुःख की बात हैं कि देश की नयी पीढ़ी इस वैश्विक संपदा से विमुख हो रही।

जयप्रकाश पांडेय - एक साहित्यकार की दृष्टी से क्या आप मानते हैं कि 'युद्ध और शान्ति' उपन्यास का भारतीय सन्दर्भों और परिवेश में फिर से पढ़ना जरुरी हो गया हैं ?

कुंदन सिंह परिहार - टालस्टाय जैसे लेखकों को फिर से पढ़ने का प्रश्न्न नहीं उठता। उन्हें पढ़ने और समझने वाले उनकी पुस्तकों को जतन से रखते हैं ताकि उन्हें बार बार पढ़ा जा सके। जैसे - जैसे पढ़ने वाली की समझ बढ़ती हैं, उसे इनमें नये अर्थ और नयी समझ मिलती हैं। ऐसे लेखक जो विषय उठाते हैं वे सर्वकालिक और मनुष्यमात्र के होते हैं। नाम और स्थान बदल दें तो वह विषय आपको अपना या अपने समाज का लग सकता हैं। इसलिए बड़े लेखक को द्रष्टा कहा जाता हैं।

रमेश सैनी - परिहार जी, जबलपुर में परसाई जी के अनेक अड्डे थे, जहाँ उनकी मित्रों के साथ बैठक होती थी। 'व्यंग्यम्' के संपादक रमेश शर्मा 'निशिकर' के घर पर भी व्यंगकारों का जमावडा होता था। क्या इस अड्डेबाजी में भी साहित्य की कोई भूमिका हैं ?

कुंदन सिंह परिहार - सुना हैं कि परसाई जी की अड्डेबाजी पहले उनके मित्र शेष नारायण राय की पुस्तकों की दुकान में होती थी। बाद में परसाई जी का पैर ख़राब होने पर ये बैठकें उनके घर में ही होने लगीं, जो मेरे तब के घर के पास था। परसाई जी की बैठकें बहुत दिलचस्प और ज्ञानवर्धक होती थीं, इसलिए कॉलेज और यूनिवर्सिटी के छात्र उन्हें अपनी समस्याएँ लेकर घेरे रहते थे। परसाई जी को भी बातचीत में बड़ा रस आता था। अक्सर परसाई जी एकमात्र वक्ता होते थे और बाकी सब श्रोता।

'व्यग्यम' की बैठकें उद्देश्यपूर्ण और मैत्रीभाव की होती थीं। परनिंदा में सुख पाने वाले लोग यहाँ नहीं थे। 'निशिकर' जी संकोची, अपने को पीछे रखने वाले और दूसरों को आगे बढ़ाने वाले व्यक्ति थे।

यहाँ अच्छी रचनाशीलता और 'व्यग्यम ' को बेहतर बनाने की बातें होती थीं। इन बैठकों में 'व्यंग्य्म्' के अन्य दो संपादक महेश शुक्ल और श्रीराम आयंगर, सैनी जी, श्रीराम ठाकुर 'दादा', श्यामसुन्दर सुल्लेरे, रासबिहारी पांडे, चैतन्य भट्ट, द्वारका गुप्त, गंगा पाठक, मधुसुदन मधु और मैं शामिल होते थे। ऐसी बैठकों का लाभ यह होता कि नये लेखकों की समझ साफ़ होती हैं और उन्हें लिखने के लिए प्रोत्साहन मिलता हैं। परसाई जी के पास बैठना ही एक अनुभव होता था। 'जो कछु गंधी दे नहीं, तो भी बास सुवास। '

जयप्रकाश पांडेय - आप अपनी कहानियों के पात्रों में किसे सर्वाधिक पसंद करते हैं और क्यों ?

कुंदन सिंह परिहार - पांडेय जी, लेखक अपने सभी पात्रों का जनक होता हैं। माता - पिता को अपने सभी बच्चे प्यारे होते हैं, लेकिन उनके दिल के ज्यादा निकट वे बच्चे होते हैं जो कमजोर, भोले - भाले, निश्छल होते हैं। ऐसे ही मेरे वे पात्र मुझे ज्यादा प्यारे हैं जो साधनहीन, गरीब, भोले - भाले, ईमानदार, आसानी से ठगे जाने वाले हैं। वे बिना कोई हलचल मचाये दुनिया में आते हैं और, बेनाम, ख़ामोशी से विदा हो जाते हैं। ऐसे अनेक चरित्र आपको मेरी कहानियों में मिलेंगे। वे सभी मुझे प्रिय हैं।

रमेश सैनी - हमें ख़ुशी हैं कि आपके साथ विस्तार से यह बातचीत हुई। 'निशिकर', ठाकुर 'दादा' रासबिहारी पांडे, सुल्लेरे जी अब नहीं हैं, लेकिन हम हमेशा उन्हें याद करते हैं।

(व्यंग्य यात्रा के अंक 60 साभार)

व्यंग्य - फूलों के कद्रदाँ

डॉ. कुंदन सिंह परिहार

कहावत है कि मूर्ख घर बनाते हैं और अक्लमन्द उन में रहते हैं। उसी तरह यह भी कहा जा सकता है कि मूर्ख फूल उगाते हैं और होशियार उनका उपभोग करते हैं।

यकीन न हो तो कभी सबेरे पाँच बजे उठकर दरवाज़े या खिड़की से झाँकने का कष्ट करें। अलस्सुबह जब अँधेरा पूरी तरह छँटा नहीं होता और फूलों के मालिक घर के भीतर ग़ाफ़िल सोये हुए होते हैं तभी हाथों में छोटे-छोटे झोले और लकड़ियाँ लिए फूलों के असली कद्रदानों की टोलियाँ निकलती हैं। किसी भी घर में फूल देखते ही ये अपने काम में लग जाते हैं। फूल चारदीवारी के पास हुए तो फिर कहना क्या, अन्यथा जैसे भी हों उन्हें तोड़कर झोले के हवाले किया जाता है। कई बार खींचतान में पूरी डाल ही टूट जाती है। फूलों का मालिक जब सोया था तब घर में बहार थी, सबेरे जब उठता है तो ख़िज़ाँ या वीराना मिलता है। 'कल चमन था आज इक सहरा हुआ, देखते ही देखते ये क्या हुआ। '

फूलों की चोरी में कोई निचले दर्ज़े के लोग या छोकरे ही नहीं होते। इनमें ऐसे लोग भी होते हैं जिन्हें भद्र पुरुष या भद्र महिला कहा जाता है। इन्हें आप रंगे हाथों पकड़ भी लें तब भी चोरी का इलज़ाम लगाना मुश्किल होता है।

एक सज्जन दूध का डिब्बा लेकर सपत्नीक निकलते हैं। दूध लेकर लौटते वक्त फूलों के दर्शन होते ही पति पत्नी दोनों एक-एक पौधे पर चिपक जाते हैं। फायदा यह होता है कि दस मिनट का काम पाँच मिनट में मुकम्मल हो जाता है। स्त्री के साथ होने से मकान-मालिक के द्वारा कोई बड़ी बदतमीज़ी करने का भय कम रहता है।

एक महिला हैं जो स्लीवलेस ब्लाउज़ और महँगी साड़ी पहनकर सुबह की सैर को निकलती हैं। 'गंगा की गंगा, सिराजपुर की हाट' की शैली में सैर के साथ फूलों का संग्रह होता चलता है।

एक और सज्जन हैं जो हाथ में लकड़ी लेकर निकलते हैं जिस पर कोई कील जैसी चीज़ है। वे चारदीवारी के पार से पौधे की गर्दन कील में फँसा कर अपनी तरफ खींच लेते हैं और फिर इत्मीनान से फूल तोड़ लेते हैं। कील की मदद से दूरियाँ नज़दीकियों में तब्दील हो जाती हैं।

एक साइकिल वाले हैं जो फूल देखते ही अपनी साइकिल धीरे से स्टैंड पर लगाते हैं और बड़ी खामोशी से झटपट फूल तोड़कर ऐसे आगे बढ़ जाते हैं जैसे कुछ हुआ ही न हो। अमूमन साइकिल वाले से झगड़ा करने या उसे गालियाँ देने में फूल-मालिक को ज़्यादा दिक्कत नहीं होती। ये सज्जन भी कई बार फूल-मालिकों की गालियाँ खा चुके हैं, लेकिन वे 'स्थितप्रज्ञ' के भाव से आगे बढ़ जाते हैं। पीछे से कितनी भी गालियाँ आयें, वे पीछे मुड़कर नहीं देखते, न ही उनके पुष्प-संग्रह के कार्यक्रम में कोई तब्दीली होती है।

कुछ महिलाएँ घर की बेटियों को लेकर फूलों के विध्वंस को निकलती हैं। माताएँ एक तरफ खड़ी हो जाती हैं और बेटियाँ फूलों पर टूट पड़ती हैं। देश की भावी माताओं को ट्रेनिंग दी जा रही है। आगे यही माताएँ अपनी सन्तानों को फूल चुराने की ट्रेनिंग देंगीं। परंपरा आगे बढ़ेगी। पुण्य कमाने के काम में कैसा पाप?

किशोरों की टोलियाँ अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर पुष्प-संहार के लिए निकलती हैं। शायद इनके जनक-जननी घर में आराम से सो रहे होंगे। जब पुत्र अपने विजय-अभियान से लौटेंगे तब माता-पिता नहा धो कर पूजा-पाठ में लगेंगे। देश की अगली पीढ़ी का ज़रूरी प्रशिक्षण हो रहा है। आगे रिश्वतखोरी और कमीशन-खोरी करने में दिक्कत नहीं होगी। अभी से मन की हिचक निकल जाए तो अच्छा है। शायद इसी को अंग्रेजी में 'पर्सनैलिटी डेवलपमेंट' कहते हैं। ये लड़के उन्हें बरजने वाले गृहस्वामियों को दूर से कमर हिला कर मुँह चिढ़ाते हैं। बात बढ़े तो पत्थर भी फेंक सकते हैं।

एक दिन सबेरे सबेरे हल्ला-गुल्ला सुना तो आँख मलते बाहर निकला। देखा, सामने के मकान वाले नवीन भाई स्लीवलेस ब्लाउज़ वाली मैडम से उलझ रहे थे।

मैडम गुस्से से कह रही थीं, 'थोड़े से फूल तोड़ लिये तो कौन सी आफत आ गयी। फूल कोई खाने की चीज़ है क्या?'

नवीन भाई ने उसी वज़न का उत्तर दिया, 'आपको पूछ कर फूल तोड़ना चाहिए था। इस तरह चोरी करना आपको शोभा नहीं देता। '

मैडम चीखीं, 'व्हाट डू यू मीन? मैं चोर हूँ? जानते हैं मेरे हज़बैंड मिस्टर सोलंकी आई ए एस अफसर हैं। '

नवीन भाई हार्डवेयर के व्यापारी हैं। आई ए एस का नाम सुनते ही वे 'हार्डवेयर' से बिलकुल 'सॉफ्टवेयर' बन गये। हकलाते हुए बोले, 'मैडम, मेरा मतलब है आप कहतीं तो मैं खुद आपको फूल दे देता। '

मैडम बोलीं, 'वो ठीक है, लेकिन आप किस तरह से बात करते हैं! आप में 'मैनर्स' नहीं हैं। '

वे अपना झोला नवीन भाई की तरफ बढ़ाकर बोलीं, 'आप अपने फूल रख लीजिए। आई डोंट नीड देम। '

नवीन भाई की घिग्घी बँधने लगी, बोले, 'नईं नईं मैडम। आप फूल रखिए। मैंने तो यों ही कहा था। आप रोज फूल ले सकती हैं। गुस्सा थूक दीजिए। '

मैडम अपना झोला लेकर चलने लगीं तो पीछे से नवीन भाई बोले, 'अपने हज़बैंड से, मेरा मतलब है 'सर' से, मेरा नमस्ते कहिएगा। '

फूल चुराने वालों में से कइयों को देखकर ऐसा लगता है कि वे महीनों नहाते नहीं होंगे। फिर सवाल यह उठता है कि वे किस लिए फूल चुराते हैं? लगता यही है कि ये सज्जन दूसरों को पुण्य कमाने में मदद करते होंगे। इस बहाने आधा पुण्य उन्हें भी मिल जाता होगा।

पूछने पर कुछ पुष्प-चोरों से मासूम सा जवाब मिलता है कि देवता पर चोरी के फूल चढ़ाने से ज्यादा पुण्य मिलता है। उस हिसाब से अगर देवता पर चढ़ाने के लिए दूकानों से नारियल और प्रसाद चुराया जाए तो पुण्य की मात्रा दुगुनी हो जाएगी।

डॉ. कुन्दन सिंह परिहार, जबलपुर

अलख जगाते हमारे साथ कुन्दन सिंह परिहार

श्री राजीव कुमार शुक्ल

मैं बनारस में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में अपनी पढ़ाई पूरी कर 1978 के अक्टूबर में पहली पूर्णकालिक नौकरी करने जबलपुर आया। सबसे बड़ी ललक थी कि हरिशंकर परसाई जी से मिलने का सुयोग बने। वह कुछ दिनों बाद हुआ और लगा कि जैसे मैंने अपना वैचारिक अभिभावक पा लिया। नगर के अन्य साहित्यिक लोगों से परिचय और संवाद का भी सिलसिला शुरू हुआ और फिर सौभाग्य मिला ज्ञानरंजन जी से मिलने का। उनके जादुई व्यक्तित्व के अनूठे आकर्षण ने ऐसा बाँधा कि गाँठ अब तक कसकर लगी हुई है। उनके मार्गदर्शन में ही प्रगतिशील लेखक संघ और 'विवेचना' की गतिविधियों में हिस्सेदारी की शुरुआत हो गई। यह अनुभूति हो गई थी कि लिखने-पढ़ने के परिदृश्य में मेरा मन इसी दुनिया में रमता है। अब अधिक सघनता और आवृत्ति के साथ जबलपुर के प्रगतिशील साहित्यकारों और संस्कृतिकर्मियों का संग-साथ होने लगा, जो मुझे लगातार समृद्ध करता गया। उनमें डॉ. अरुण कुमार, अलखनंदन, अजित हर्षे, अशोक शुक्ल, राजेन्द्र दानी जैसे लगभग हमउम्र थे, तो डॉ. मलय, डॉ. श्याम सुंदर मिश्र, डॉ. राम शंकर मिश्र, डॉ. मगनभाई पटेल, डॉ. मदन गोपाल पटेरिया जैसे वरिष्ठ गुरुजन भी। धीरे-धीरे एक और व्यक्तित्व की पहचान हुई। ये कुन्दन सिंह परिहार थे। पता चला कि वे गोविंदराम सेकसरिया वाणिज्य महाविद्यालय, जिसका लोकप्रिय नाम जी. एस. कॉलेज है, में प्राध्यापक हैं यानी तब वे ज्ञानरंजन जी के सहकर्मी तो थे ही, मेरे परम मित्र डॉ. अरुण कुमार के भी वरिष्ठ साथी प्राध्यापक थे। अरुण जी मेरी ही तरह बीएचयू से पढ़ाई पूरी कर नौकरी के लिए जबलपुर आए थे और इसलिए "हाय हमारे वे प्यारे बनारस के प्यारे दिन कहाँ गए" वाली दो प्रतिभागियों की गोष्ठियों में उनकी स्वाभाविक संगत होती थी (हालांकि यह विलाप मैं ही ज़्यादा किया करता था, पर उसमें थोड़ा-बहुत छौंक गाहे-बगाहे वे भी लगा देते थे)। तो उसके बाद के दिनों में परिहार साहब के साथ संपर्क के बने रहने और दृढ़तर होते जाने में अरुण जी से मेरी गाढ़ी दोस्ती का भी खासा योगदान रहा। बहुत समय तक जब परिहार साहब को याद करता था, तो अरुण जी उसमें मुस्कुराते हुए मौजूद रहते थे।

अभी वर्णित चर्चा से यह संकेत तो मिल ही गया होगा (जो उन्हें जानते हैं, उन्हें संकेतों की आवश्यकता नहीं) कि कुन्दन सिंह परिहार तुरंत चमककर नज़र में चढ़ जाने वाली शख़्सियत

नहीं हैं। इकहरा बदन, मझोला क़द, विनम्र और अतिशय शालीन भंगिमा। मृदु स्वर। सौम्य स्वभाव। संयमित और संतुलित भाषा। अमूमन ख़ामोश रहने वाले। जब तक बिना बोले काम चल जाए, न बोलने वाले। बोलें, तो भी बहुत ज़रूरी बात बहुत संक्षेप में कहकर चुप हो रहने वाले। यानी जैसे धूमधाम से भरपूर कुछ लोग बरबस आपका सारा ध्यान खींच कर जकड़ लेते हैं और जो हर घड़ी सिर पर सवार रहना अपना अधिकार समझते हैं, वैसे क़तई-क़तई नहीं।

पर जब उन्हें आप कुछ और जानते हैं, तब बूझते हैं कि उनकी विनम्रता उनकी अंतर्निहित सज्जनता से उपजी है और भरपूर तेजस्विता और आत्मविश्वास का समावेश लिए हुए है। वे दीन-दुनिया की हलचलों से, ज़माने की रफ़्तार और रंगत से लगातार न केवल वाकिफ़ हैं, बल्कि एक प्रखर आलोचनात्मक विवेक से उसे जाँचते और आँकते भी रहते हैं और वह उनकी कहानियों और व्यंग्य-कृतियों में रचनाधर्मिता का कच्चा माल बनता है। अपने लेखन कर्म को वे बेहद गंभीरता से लेते हैं और उसे बेहतर दुनिया के लिए संघर्ष की राह चलने वालों का एक सच्चा और भरोसेमंद साथी बनाते हैं।

हममें से बहुत से लोग उन्हें परिहार साहब कहते हैं। मैं भी उनके लिए इसी सम्बोधन का प्रयोग करता हूँ। तो परिहार साहब से घनिष्ठता खरामा-खरामा पनपी। उनके अन्य अनेक गुणों के साथ जो एक गुण मुझे बहुत शुरू से प्रभावित करने लगा था, वह था सही और स्पष्ट बोलने का उनका निरंतर जतन। चूंकि मैं रेडियो में लगभग जीवन भर नौकरी करता रहा, इसलिए इस गुण का यानी शुद्ध उच्चारण के साथ बोलने को लेकर सजग और सक्रिय होने का मोल भी काफ़ी सम्मान के साथ जानता और मानता हूँ। आप परिहार साहब को जब भी सुनेंगे, पाएंगे कि वे विविध व्युत्पत्तियों से हमारी बोलचाल की भाषा में आकर रच-बस गए शब्दों को सही और सफ़ाई से बोलने में कितने निपुण हैं। ध्वनि प्रसारण की दुनिया का आदमी होने के नाते मैं जानता हूँ कि अच्छे-खासे विद्वान भी अपने उच्चारण में बहुधा झोल खाते सुनाई देते हैं। इसमें बोलियों के प्रभाव से लेकर अपरिचय और असावधानी आदि अनेक कारकों का योगदान होता है। लेकिन विश्वास कीजिए कि अच्छे से अच्छे संभाषण के दौरान यदि उच्चारण की त्रुटियाँ होती हैं, तो वे बिल्कुल दाल में कंकड़ जैसा रसभंग करती हैं। भाषिक अशुद्धियों की भी ऐसी ही बात है। परिहार साहब के साथ

वार्तालाप में या उनको किसी विषय पर बोलते हुए सुनने की प्रक्रिया में ऐसा संकट नहीं आएगा, इसे लेकर आप निश्चिंत रह सकते हैं। चूंकि वे वर्षों तक महाविद्यालय में अध्यापन करते रहे, इसलिए इसका मूल्य और भी बढ़ जाता है। उनके विद्यार्थियों को उनसे सुथरी हुई भाषा के व्यवहार के ही संस्कार मिले होंगे और भाषा मात्र की अवहेलना और दुर्गति के वर्तमान समय में इसके लिए उनका ऋणी होना चाहिए।

यह कहना कुछ कवि सम्मेलन जैसी शैली का लग रहा है, जिसमें चमत्कार का आभास रचकर तारीफ़ वसूल की जाती है, पर इसका खतरा उठाकर भी कहूँगा कि परिहार साहब के व्यक्तित्व और कृतित्व में उनके नाम के तीनों भाग सार्थक प्रतीत होते हैं। वे कुन्दन की तरह खरे हैं, सिंह जैसे साहसी (बड़बोले नहीं पर हिम्मत वाले) और अपने आप को उन्होंने निरंतर परिहार की कठिन साधना से अनवरत स्वच्छ किया, माँजा और सँवारा है।

मुझे लगता है कि यहाँ वामदृष्टि वाली एकजुटता को बढ़ाने और फैलाने की उनकी भूमिका को भी रेखांकित कर ही दिया जाना चाहिए। जैसा मैंने लगभग आरंभ में ही उल्लेख किया, उनसे परिचय का सूत्रपात प्रगतिशील लेखक संघ और 'विवेचना' के संग-साथ से हुआ और उसी परिवेश में उनसे रिश्ता परवान चढ़ता गया। बाद में अन्य आयाम भी जुड़े, लेकिन बुनियादी आधार वही बना रहा और अब तक है। नौकरी मुझे बार-बार जबलपुर तथा फिर मध्य प्रदेश और कुछ वर्षों के लिए देश से ही बाहर और दूर ले गई और इस वजह से प्रगतिशील लेखक संघ की मध्य प्रदेश की गतिविधियों से मेरा संपर्क अपेक्षाकृत कुछ कम भी हुआ। अब जब चाकरी से मुक्त होकर जबलपुर में जीने-मरने के लिए लौटा हूँ, तो दृश्य उससे बहुत अधिक बदल गया है, जैसा मेरे यहाँ से पिछली सदी के लगभग अंत में प्रस्थान के समय था। उसके कारणों की मीमांसा की यह जगह नहीं, लेकिन यह देखना निश्चय ही बेहद आश्वस्ति की बात है कि कुन्दन सिंह परिहार न केवल हमारे संगठन प्रगतिशील लेखक संघ के साथ मज़बूती से खड़े रहे हैं, बल्कि अब बढ़ी हुई उम्र की सीमाओं के बीच भी उनकी प्रतिबद्धता, निष्ठा और अच्छी-खासी सक्रियता बनी हुई है और वे इस अत्यंत कठिन और चुनौती भरे समय में हमारा खुलकर नेतृत्व कर रहे हैं।

कुन्दन सिंह परिहार का पहला कहानी-संग्रह 'तीसरा बेटा' मेरी याददाश्त के हिसाब से 1980 के दशक के शुरुआती वर्षों में प्रकाशित हुआ था। (उसी के आसपास राजेन्द्र दानी का पहला कथा-संग्रह 'दूसरा कदम' आया था।) तब से परिहार साहब का लेखन अनवरत चलता रहा है। वे गद्यकार

हैं और कहानियों तथा व्यंग्य रचना को उन्होंने अपनी प्रमुख दो विधाओं के रूप में चुना। उनके अनेक संग्रह इन दोनों विधाओं में प्रकाशित हो चुके हैं और उनके रचनाकर्म का प्रवाह बना हुआ है।

कुन्दन सिंह परिहार मूलतः प्रेमचंद की परंपरा के रचनाकार हैं। उनके लेखन में कथ्य प्रमुख है और शिल्प पर अतिरिक्त माथापच्ची नहीं दिखाई देती। आसपास के जीवन में निरंतर घट रहा यथार्थ उनकी कृतियों में दर्ज़ होता चलता है। उनके चरित्रों का परिवेश अंततः मझोले शहर का है या बहुत हुआ तो क़स्बों तक जाता है। निपट गाँव या धड़धड़ाता महानगर वहाँ लगभग नहीं हैं। उनका उल्लेख आता है, तो छोटे शहर या क़स्बे के आदमी की निगाह में जो अंटता है, वैसा बयान होता है। पर क्या अब गाँव-क़स्बे भी महानगर बनने की बदहवास दौड़ में हाँफ़ते हुए छटपटा नहीं रहे? उनके नये कहानी-संग्रह का नाम ही है 'खोया हुआ क़स्बा'। बदलावों को वे ध्यान से देखते और समझते हैं। उनके पात्र मोहल्लों से कॉलोनियों के बीच ठिठके नज़र आते हैं। वैश्विक पूंजी की नयी-नयी चतुराइयों और चालों ने कैसे जनसंख्या के बड़े हिस्से को, ख़ासकर युवाओं को उनकी स्वाभाविक संघर्ष-चेतना से काट कर पालतू बनाया है, इसका एक सशक्त और विश्वसनीय वृत्तान्त उनकी कहानी 'रोज़ी' में मिलता है, जो 'खोया हुआ क़स्बा' संग्रह की ही है। अपने शहर में रोज़गार की कोई उम्मीद न देख दिलीप अपने होशियार दोस्त नन्दलाल की सलाह पर मुंबई चला गया है और एक मॉल में काम पा भी गया है, लेकिन असुरक्षा चौबीसों घंटे सिर पर सवार रहती है और उसे तनावग्रस्त रखती है। महीनों से घर आ तो नहीं पाया, फ़ोन पर बात होती रहती है। वह "बताता है कि मॉल में काम करने के लिए कपड़े साफ सुथरे रखना ज़रूरी होता है। टाई लगाना और जूतों पर पॉलिश करना अनिवार्य है। खड़े होने और बात करने का ढंग ठीक होना चाहिए। नाख़ुशी के बाद भी ग्राहक के सामने चौड़ी मुस्कान और विनम्रता होनी चाहिए।" नये भारत और नयी दुनिया में आगे बढ़ने के ही लिए नहीं, बचे रहने के लिए भी ये गुर जानना और बरतना अनिवार्य है। ये सर्वमान्य जीवन-मूल्य हैं। दिलीप अपने पिता से बातचीत में ज़्यादा खुलता है - "नौकरी के लिए रोज़ सौ लड़के लड़कियाँ सिफारिशें लेकर खड़े रहते हैं। ज़रा सी भी असावधानी या ग़फ़लत हुई और नौकरी गयी। बॉस से भी बड़ा बॉस ग्राहक होता है। शिकायत कर दी तो तुरन्त नौकरी पर बन आती है। चौबीस घंटे असुरक्षा की तलवार सिर पर लटकती रहती है। अंग्रेजी सुधारने और मैनर्स सीखने के लिए शाम को कोचिंग क्लास ज्वाइन कर ली है, इसलिए कहीं निकल पाने में और मुश्किल होती है। सीधी अंग्रेजी बोलने से काम नहीं चलता, मुँह को गोल करके शब्दों को लपेटना सीखना पड़ता है। ये नये चलन की नौकरियाँ बहुत मुश्किल हैं, हरदम तनाव में रखती हैं।" यह कहानी पढ़ते हुए मुझे अपने एक संपन्न संतुष्ट मित्र की याद आई, जो वर्तमान 'नये भारत' की महिमा से मुग्ध हैं और बेरोज़गारी की बात छिड़ने पर कहते हैं कि ज़ोमैटो आदि ने खाद्य-सामग्री की डेलिवरी की कितनी सारी जगहें पैदा कर दी हैं, मुझे यह क्यों नहीं

दिखाई देता। कॉल सेंटरों में काम करने वाले लड़के-लड़कियों की ज़िंदगी पर आधारित स्वर्गीया त्रिपुरारी शर्मा का लिखा और निर्देशित नाटक 'आधा चाँद' भी याद आया, पर बहरहाल हम 'रोज़ी' कहानी पर लौटें। दिलीप के माता-पिता को उससे दूरी खलती तो है, लेकिन उसके घर पर बेरोज़गार बैठे रहने से यह बेहतर स्थिति है। दादाजी अलबत्ता उसकी अनुपस्थिति से समझौता नहीं कर पाते और कुढ़ते रहते हैं। जब वे उलाहना देते हैं कि "तू कोई अनोखी नौकरी नहीं कर रहा है, हमने भी नौकरी की है", तो दिलीप अपने मन में ही कहता है कि "अब दादाजी को कौन समझाये कि उनके ज़माने में ---- न आदमी की ज़रूरतें इतनी बढ़ी-चढ़ी थीं, न बाज़ार में इतनी चमक-दमक थी।" बाज़ार की यह चमक-दमक चेहरे की ही नहीं, आत्मा की भी चमक कैसे छीन ले गई है, यह इस कहानी में हम आगे देखते हैं। जीवन के ये खंडित होते अंश कुन्दन सिंह परिहार की कहानियों में सहेज लिए गए हैं, ताकि सनद रहे और दिन बदलने की चाह ज़िंदा रहे। इसी संग्रह की एक अन्य कहानी 'एक फ़ालतू आदमी' एक वैकल्पिक यद्यपि करुणाजनक विकल्प का आभास कराती है। जैसे सिक्के के दोनों पहलू मिलकर उसे पूरा करते हैं, वैसे ही 'रोज़ी' और 'एक फ़ालतू आदमी' कहानियाँ समकालीन यथार्थ की दो धड़कनों को अभिव्यक्त करती हैं।

बतौर व्यंग्य लेखक उन्हें हरिशंकर परसाई की परंपरा में देखा जा सकता है। उन्हीं जैसे छोटे-छोटे वाक्य। सीधी सहज भाषा। पाखंडों, विसंगतियों और विडंबनाओं की पहचान और उनका असरदार बयान। विधा की प्रकृति के अनुसार यहाँ कुन्दन सिंह परिहार बयान और भाषा की अठखेलियों के साथ कुछ मौज लेते हैं। बड़ी तादाद में उनके व्यंग्य साहित्य संसार और उसके कई कर्णधारों की क्षुद्रताओं और लिप्साओं पर प्रहार करते हैं। इस प्रक्रिया में एक जाना-परखा नुस्खा बनते हैं पेशेवर साहित्य संस्थाओं और आत्ममुग्ध साहित्यकारों और उनकी कृतियों के अजीबोग़रीब नाम और उपनाम जैसे 'सम्मान उलीचक संघ', 'प्रीतमलाल 'ज़ख्मी', 'रोती ग़ज़लें' आदि आदि। काका हाथरसी अपनी कविताओं में काफ़ी अनूठी संज्ञाएं लाते थे, जैसे "शिष्या को समझा रहे त्रिगुणाचार्य त्रिशूल"। पर काका को तुक मिलाने की भी मजबूरी थी। गद्य इस मामले में अपेक्षाकृत सुविधाजनक है। साहित्य की एक दिलचस्प उठापटक और आत्मरति की पराकाष्ठा फ़ेसबुक जैसे सोशल मीडिया मंचों पर भी आजकल अक्सर दृष्टिगोचर होती है (हालांकि गंभीर विमर्श वहाँ से पूर्णतः अनुपस्थित नहीं कहा जा सकता), सो परिहार साहब का एक मीठा प्रहार उनकी व्यंग्य-रचना 'लेखक-पाठक प्रेमपूर्ण संवाद' के इस अंश में दृष्टव्य है: -

“भैया, तुम बड़े चतुर हो गये हो। बिना पढ़े रचना पर 'लाइक' ठोकते हो। अभी मैंने रचना फेसबुक पर डाली, और पाँच सेकंड में तुम्हारा 'लाइक' प्रकट हो गया। तीन पेज की रचना पाँच सेकंड में पढ़ ली? लेखक को मूर्ख बनाते हो?'

'कैसी बातें करते हैं गुरुदेव! हम तो आपकी दो लाइनें पढ़ते ही पूरी रचना के मिजाज़ को पकड़ लेते हैं। एक चावल को टटोलकर पूरी हंडी का जायज़ा ले लेते हैं। आप जैसे हर-दिल- अज़ीज़ लेखक को पूरा पढ़ने की ज़रूरत ही नहीं होती। आपने वह कहावत सुनी होगी कि ख़त का मज़मूँ भाँप लेते हैं लिफाफा देखकर। और फिर आपकी तारीफ करने के मामले में हम किसी से पीछे क्यों रहें? हम तो आपके पुराने मुरीद हैं। सच कहूँ तो आपका नाम देखते ही उँगलियाँ 'लाइक' दबाने के लिए फड़कने लगती हैं।'

'अरे भैया, तो पाँच दस मिनट बाद भी 'लाइक' ठोक सकते हो ताकि लेखक को लगे कि रचना पढ़ी गयी। तुम्हारा झूठ तो सीधे पकड़ में आता है। मेरे अलावा दूसरे भी समझते हैं।'”

दिलचस्प बात यह है कि यह रचना परिहार साहब ने फ़ेसबुक पर डाली हुई है। इसमें मुझे परसाई जी की परंपरा का एक और नाता दिखाई देता है। वे लगातार समाचार-पत्रों में कॉलम लिखते थे और उनके युगांतरकारी अवदान में लोक-शिक्षक का रूप सबसे प्रकट और प्रत्यक्ष रूप से उस लेखन में सामने आता था। अब फ़ेसबुक पर लिखने में परिहार साहब अकेले नहीं (ढेर सारे लोग अब यह कर रहे हैं और बहुत सारा कूड़ा-कर्कट भी वहाँ निरंतर झोंका जाता रहता है), लेकिन वहाँ भी वे जो लिख रहे हैं, पुरोधा प्रेमचंद की सीख के अनुसार वह जगाने वाला है, सुलाने वाला नहीं। लोगों तक पहुँचने के लिए सभी उपलब्ध माध्यमों का उपयोग करना चाहिए। पर जो हमें कहना है, उसकी धार कुंद न हो। कुन्दन सिंह परिहार पूरी लगन और मनोयोग के साथ लोक-शिक्षण की इस मुहिम में रत रहते हैं।

हमारे समय को, हमको कुन्दन सिंह परिहार की बहुत ज़रूरत है। उनके साथ से हम समृद्ध हैं, सशक्त हैं।

- श्री राजीव कुमार शुक्ल, कवि, आलोचक, पूर्व डिप्टी डीडीजी आकाशवाणी दूरदर्शन, फ़्लैट नं. 406, जी-ब्लॉक, दत्त टाउनशिप, तिलहरी, जबलपुर (मध्य प्रदेश) 482021 ई-मेल - rajeevjalaj@gmail.com मोबाइल - 9818586684

कहानी - जोकर

डॉ. कुंदन सिंह परिहार

धनीराम डा. सेन के अस्पताल की नौकरी पर कब लगे यह शायद ही किसी को याद हो। दस पन्द्रह साल तो हो गये होंगे। तब धनीराम खूब चुस्त-दुरुस्त थे। लंबा कद और मज़बूत देह। सब्ज़ रंग की यूनिफॉर्म और बैरेट कैप पहने सारे अस्पताल में उड़ते रहते थे। धीरे-धीरे वे धनीराम से 'धनीराम दादा' और फिर सिर्फ 'दद्दू' हो गये।

दद्दू के अपने परिवार का अता-पता नहीं था। पूछने पर ज़्यादा बोलते भी नहीं थे। लोग बताते थे कि उनके दो बेटे शहर में ही हैं और उनकी पत्नी बड़े बेटे के पास रहती है। लेकिन दद्दू अस्पताल से ज़्यादा देर के लिए कहीं नहीं जाते। जाते हैं तो घंटे दो-घंटे में ही फिर प्रकट हो जाते हैं। थोड़ी ही देर बाद फिर 'बैतलवा डार पर'। उनसे मिलने कुछ बच्चे ज़रूर कभी-कभी अस्पताल में आ जाते थे जो लोगों के अनुसार उनके नाती- पोते थे, लेकिन वे उन्हें ज़्यादा देर टिकने नहीं देते थे। सामने टपरे से उनके लिए बिस्कुट टॉफी खरीद देते और जल्दी चलता कर देते।

दद्दू अस्पताल के गेट के पास बने अस्थायी, शेडनुमा कमरे में रहते थे। खाना खुद ही बनाते थे, लेकिन सिर्फ दोपहर को। रात को ड्यूटी के बाद इतना थक जाते कि खाना बनाना मुसीबत बन जाता। अस्पताल के लोग कहते हैं कि यह कभी पता नहीं चलता कि दद्दू कब सोते हैं और कब उठते हैं। ज़्यादातर वक्त वे चलते-फिरते ही दिखते हैं। बड़े सबेरे नहा-धो कर वे अपनी वर्दी कस लेते हैं और फिर रात तक वह वर्दी चढ़ी ही रहती है। अस्पताल के कर्मचारी उनसे खौफ खाते हैं क्योंकि वे घोर ईमानदार और अनुशासनप्रिय हैं, और अस्पताल की व्यवस्था में कोताही पर किसी को नहीं बख्शते। डा. सेन को उनकी वफादारी और उपयोगिता का भान है, इसलिए उनकी कभी-कभी की ज़्यादतियों को अनदेखा कर देते हैं।

दद्दू बड़े ख़ुद्दार आदमी हैं। न किसी की खुशामद करते हैं, न किसी की सेवा लेते हैं। अस्पताल के कर्मचारी उन्हें खुश करने के लिए चाय का आमंत्रण देते रहते हैं, लेकिन दद्दू हाथ हिला कर आगे बढ़ जाते हैं। दूसरों पर खर्च करने के मामले में भी वे भारी कृपण हैं। कहते हैं, 'हम गरीब

आदमी हैं। किसी की सेवा करने की हमारी हैसियत नहीं है। अपना खर्च पूरा होता रहे वही बहुत है। '

उम्र गुज़रने के साथ साथ दद्दू की चुस्ती और फुर्ती में भी फर्क पड़ने लगा था। उनके बाल खिचड़ी हो गये थे और आँखों के नीचे और बगल में झुर्रियाँ पड़ गयी थीं। चलने में घुटने झुकने लगे थे। वर्दी में भी पहले जैसी कड़क नहीं रह गयी थी। अब वे चलते कम और बैठते ज़्यादा थे। फिर भी वे शारीरिक अशक्तता को आत्मा के बल से धकेलते रहते थे।

लेकिन दद्दू की इस ठीक-ठाक चलती ज़िन्दगी में ऊपर वाले ने अचानक फच्चर फँसा दिया। उस दिन दद्दू रोज़ की तरह आने जाने वालों को नियंत्रित करने की गरज़ से अस्पताल के प्रवेश-द्वार पर जमे थे कि अचानक उनका सिर पीछे को ढुलक गया और शरीर एक तरफ झूल गया। आंँखों की पुतलियाँ ऊपर को चढ़ गयीं और मुँह की लार बह कर पहले ठुड्डी और फिर गले तक पहुँची। लोगों ने दौड़ कर उन्हें सँभाला और उठाकर भीतर ले गये। सौभाग्य से वे अस्पताल में थे इसलिए तुरन्त उपचार हुआ। थोड़ी देर में वे होश में आ गये, लेकिन कमज़ोरी काफी मालूम हो रही थी। डाक्टरों ने जाँच-पड़ताल करके दिल में गड़बड़ी बतायी। बताया कि रक्त-संचालन ठीक से नहीं होता। दद्दू के लिए कुछ गोलियाँ मुकर्रर कर दीं जिन्हें नियमित लेना ज़रूरी होगा। साफ हिदायत मिली कि दवा लेने में कोताही की तो किसी दिन फिर उलट जाओगे।

दद्दू एक दिन के आराम के बाद ड्यूटी पर लौट आये, लेकिन चेहरा विवर्ण था और आत्मविश्वास हिल गया था। बैठे-बैठे ही कमज़ोर आवाज़ में निर्देश देते रहे। दो-तीन दिन में फिर सभी ज़िम्मेदारियाँ सँभालने लगे, लेकिन चेहरे से लगता था कुछ चिन्ता में रहते हैं। बेटों को पता चला तो आये और हाल-चाल पूछ कर चले गये। जब अस्पताल में ही हैं तो घरवालों को चिन्ता करने की क्या ज़रूरत? मुफ्त में सारी मदद उपलब्ध है। ऐसा भाग्य वालों को ही नसीब होता है।

इस झटके के बाद दद्दू कुछ ढीले-ढाले हो गये हैं। पहले वाली कड़क और चुस्ती नहीं रही। अब लोगों पर चिल्लाते-चीखते भी नहीं थे। लेकिन ड्यूटी में कोताही नहीं करते थे। शायद कहीं डर भी था कि ड्यूटी में कोई छूट माँगने पर अनुपयोगी या अनफिट न मान लिये जाएँ।

लेकिन दद्दू दवा खाने के मामले में चूक करते थे। कई बार ड्यूटी में इतने मसरूफ़ रहते कि दवा का ध्यान ही न रहता। कोई याद दिलाने वाला भी नहीं था। रात को थके हुए लौटते और खाना

खा कर सो जाते। बाद में याद आता कि दवा नहीं खायी। दद्दू इतने पढ़े-लिखे भी नहीं थे कि दवा न लेने से होने वाले परिणामों को ठीक से समझ सकें।

इसी चक्कर में दद्दू कुछ दिन बाद फिर पहले जैसा झटका खा गये। इस बार तीन-चार दिन बिस्तर पर ही रहे। ठीक होने में भी हफ्ता भर लग गया, फिर भी कमज़ोरी कई दिन तक बनी रही। इस बार दद्दू की ज़िन्दगी की रफ्तार धीमी पड़ गयी। ज़्यादा चलना-फिरना या ज़्यादा देर तक खड़े रहना मुश्किल हो गया। बीच-बीच में मतिभ्रम हो जाता। याददाश्त भी धोखा देने लगी। मुख़्तसर यह कि अनेक प्रेतों ने दद्दू को घेरना शुरू कर दिया। अब उन्हें हर काम में सहायक की ज़रूरत पड़ने लगी।

ऊपर के स्तर पर यह महसूस किया जाने लगा कि दद्दू अब ज़्यादा काम के नहीं रहे। किसी दिन अस्पताल में ही कुछ हो गया तो क्या होगा? उनके बेटों का क्या ठिकाना, अपनी ज़िम्मेदारी निभायें, न निभायें। तय हुआ कि उनसे कह दिया जाए कि अपने बेटों के पास चले जाएँ और वहीं आराम करें। समझें कि अब उनकी हालत काम करने की नहीं रही।

दद्दू तक बात पहुँची उनका चेहरा दयनीय हो गया। बोले, 'बेटों के पास कहाँ जाएँगे? बेटों के पास रह सकते तो नौकरी में क्यों चिपके रहते?'

लेकिन ऊपर से पक्का आदेश प्रसारित हो चुका था। उनका हिसाब-किताब करके अनुकम्पा-स्वरूप एक माह की पगार अतिरिक्त दे दी गयी। अब दद्दू अस्पताल में फालतू हो चुके थे। अब कोई उनमें पहले जैसी दिलचस्पी नहीं लेता था।

बार-बार मिलते इशारों को समझ कर एक दिन दद्दू ने अपना सामान समेट कर अस्पताल छोड़ दिया। लेकिन तीन दिन बाद ही वे अस्पताल के गेट के पास बैठे दिखे। वे हर परिचित को अपनी कैफियत दे रहे थे--- 'बेटों के साथ गुज़र कैसे हो भाई? दोनों बेटे समझते हैं कि मेरे पास बहुत पैसा है। किसी न किसी बहाने दिन भर फरमाइश होती रहती है। बच्चों को सनका देते हैं कि मुझ से पैसा माँगें। आराम से बैठना मुश्किल हो जाता है। छोटा बेटा रोज़ रात को दारू पी कर आता है। खूब हंगामा मचाता है। मैं समझाता हूँ तो मुझे भी उल्टी-सीधी सुनाता है। ऐसे लोगों के साथ रहकर मैं क्या करूँगा? मैं हमेशा भले आदमियों के साथ रहा हूँ। '

दिन भर दद्दू अस्पताल में इधर-उधर घूमते और पुराने साथियों से गप लगाते रहे। रात को ग़ायब हो गये। दूसरे दिन सुबह फिर हाज़िर हो गये। अस्त-व्यस्त कपड़े, बढ़ी दाढ़ी और उलझे बाल। दद्दू अब अस्पताल के हर काम के लिए प्रस्तुत दिखते हैं। कोई मदद के लिए किसी को आवाज़ लगाता और पुकारे गये व्यक्ति से पहले दद्दू लपक कर पहुँच जाते। गाड़ियाँ अस्पताल का सामान लेकर आतीं तो टेलबोर्ड खुलते ही सामान उतारने के लिए दद्दू पहुँच जाते। भारी सामान को लेकर अकेले ही लड़खड़ाते हुए चल देते। दरअसल वे साबित करना चाहते थे कि वे अब भी उपयोगी और फिट हैं।

अस्पताल में अब दद्दू नये लड़कों के सामने पंजा बढ़ा देते, कहते, 'आजा, पंजा लड़ा ले। ' सामने वाला उनके काँपते हुए पंजे में अपना पंजा फँसाता, फिर थोड़ी देर ज़ोर लगाने के बाद खुद ही अपना पंजा झुका देता, कहता, 'दद्दू, आप में अभी बहुत दम है। आप से कौन जीतेगा?' दद्दू खुश हो जाते। वे खुद को और दूसरों को आश्वस्त करना चाहते थे कि उन में अब भी कोई कमी नहीं है।

दद्दू सबेरे अस्पताल आते तो वहाँ लोगों को दिखा कर चारदीवारी के किनारे किनारे दौड़ कर दो-तीन चक्कर लगाते, फिर स्कूली बच्चों की तरह उछल उछल कर पी.टी. करने में लग जाते। लोग उनके कौतुक देख सहानुभूति और दया से हँसते और उनकी हालत देखकर उन्हें दस बीस रुपये पकड़ा देते। कभी बड़े खुद्दार रहे दद्दू अब पैसे ले लेते थे।

एक दिन बड़े डाक्टर साहब की गाड़ी गेट के पास रुकी तो दद्दू ने दौड़कर उनके सामने सलाम ठोका। कई दिन की बढ़ी दाढ़ी और माथे पर रखे खिचड़ी बालों की वजह से वे खासे जोकर दिखते थे। तन कर खड़े होकर बोले, 'सर, मैं अब भी बिल्कुल फिट हूँ। मुझे ड्यूटी पर बहाल किया जाए।'

डाक्टर साहब ने उनकी तरफ देख कर कहा, 'अब आप ड्यूटी की चिन्ता छोड़ कर आराम कीजिए। आपको आराम की ज़रूरत है। ' फिर उन्होंने जेब से दो सौ रुपये निकाल कर दद्दू की तरफ बढ़ा दिये। कहा, 'ये रख लीजिए और घर जाइए। '

उसी रात आदेश प्रसारित हो गया कि दद्दू को गेट के भीतर प्रवेश न करने दिया जाए। उस दिन के बाद दद्दू दो-तीन दिन गेट के बाहर मंडराते दिखे, फिर हमेशा के लिए ग़ायब हो गये।

डॉ. कुन्दन सिंह परिहार, जबलपुर

आलेख - कुंदन सिंह परिहार के कृतित्व पर स्व. ललित सुरजन के विचार

स्व. ललित सुरजन

साहित्य की हर विधा की भाषा शैली और विषय निरूपण की अपनी अपनी विशिष्टताएं होती हैं इसलिए प्रत्येक विधा पाठक अथवा सही हृदय से एक विशिष्ट व्यवहार के प्रत्याशा रखती है मसलन उपन्यास को हिले अगर उपन्यास आकार में छोटा है तब भी उसे पढ़ने के लिए समान तौर पर काम से कम एक दिन का वक्त चाहिए और वह भी ऐसा कि पढ़ते समय कोई खलना पड़े नाटक को पढ़ा तो जा सकता है लेकिन उसका रसास्वाद रंग मंच पर प्रस्तुति से ही संभव है कविता भी पाठक से धैर्य और तल्लीनता की मांग करती है उसे समाचार पत्र में छपी खबर की तरह नहीं पढ़ा जा सकता इन सब से अलग स्थिति कहानी की है कहानियां अमूमन बहुत लंबी नहीं होती उन्हें पढ़ने में अधिक वक्त नहीं लगता और पढ़ने के लिए समय चुराना बहुत कठिन नहीं होता है इतना सब जो कहा इसके अपवाद भी अवश्य होंगे एक समय पत्रिका में एकांकी नाटक छपते थे और उनका आनंद उठाना संभव था कुछ एक मूधृनय लेखक के नाटक रंगमंच के लिए कठिन थे लेकिन वह पाठकों के बीच लोकप्रिय हुए थे।

इसी बातें ऐसी उपन्यास भी लिखे गए हैं जिन्हें पढ़ने के लिए पाठक समय निकालने के लिए स्वयं मजबूर हो जाता है उपन्यास की कथावस्तु और निर्वाह यदि रोचक है तो फिर सारे काम धाम छोड़कर पाठक उसमें डूब जाता है किसी समय में खुद लंबी रेल यात्रा में मोटे - मोटे उपन्यास साथ लेकर चलता था की आते - जाते आराम से पढ़ सकूंगा और यहां बात जासूसी उपन्यासों की नहीं बल्कि श्रेष्ठ साहित्य कृतियों की हो रही है विष्णु प्रभाकर का अद्दध नरेश्वर गंगाधर गाडगिल का आशापूर्णा देवी का प्रथम प्रति श्रुति और सुवर्णा लता कविता की बात न्यारी है एक मंच की कविता है जिसे कोई अगले दिन भी याद नहीं रखना एक हिंदी ग़ज़ल है जिसके सिरमौर दुष्यंत की गजलें जगह - जगह उद्धृत की जाती है और एक वह कविता है जो पाठक को बार - बार नए सिरे से समझने के लिए आमंत्रित करती है ऐसी कविता सीधी सपाट लगकर भी अर्थ गंभीर हो सकती है

कविता और नाटक प्राचीन काल से चली आ रही विधाएं हैं उपन्यास अपेक्षाकृत बहुत नई विधा है लेकिन कहानी का उद्रव काम पुराना नहीं है कथासरितसागर जातक कथाएं पंचतंत्र जैसे उदाहरण भारतीय साहित्य में मौजूद है हिंदी कहानी का मूल स्रोत शायद उनमें ढूंढा जा सकता है यह तमाम बातें में एक साधारण पाठक होने के नाते कर रहा हूं विद्वान अध्यापक और आलोचक अगर इन कथनों से सहमत ना हो तो मेरी निंदा कर सकते हैं जहां तक आज की कहानी की बात है उसमें भी शायद कुछ वर्गीकरण संभव है एक तो वह कहानी है जो खाने को गदय मैं है लेकिन उनका पूरा या आंशिक विन्यास काव्यमय होता है यह कथाकार की क्षमता पर निर्भर है कि वह अपनी रचना को पठनीय और सराहनीय कैसे बनाता है फिर वह कहानी है जिनमें कथाकार स्वयं हर समय अपनी उपस्थिति का अहसास करवाते चलता है और अपने विद्वता से पाठकों को आक्रांत कर देता है कहानी का एक रूप वह भी है जिसमें कथाकार मानव किसी फार्मूले के अंतर्गत लिखता है कथा का प्रारंभ कहीं से भी हो अंत पूर्व निर्धारित होता है।

इन सब से हटकर सीधी सच्ची कहानी भी लिखी जाती हैं इनमें कथाकार की दृष्टि का पहला पान उजागर होता है वह अपने चारों तरफ खुली आंखों से सब कुछ देखता रहता है उसकी भाषा में प्रदर्शित होती है इन कहानियों को पढ़ाते हुए लगता है कि कथाकार के पास खाने के लिए कितना कुछ है एक साधारण व्यक्ति अपने आसपास के जिन बातों से बेखबर होता है समर्थ कथा का उन छोटे - छोटे बातों को उठाकर करीने से पाठक के सामने रख देता है कि लो इसमें अपनी छवि देख लो। यह कहानी महज मनो विनोद के लिए नहीं लिखी जाती इनको लिखने वाला कोई समाज सुधारक उपदेश या प्रवचन करता भी नहीं होता वह तो अहंकार का लबादा ओढ़ बिना जीवन के सत्य को समाज के सामने प्रकट करने का काम करता है मुझे ऐसी कहानी पसंद आती हैं कुंदन सिंह परिहार का नया संकलन कांटा और अन्य कहानियां मेरे सामने आया तो मैं इन कहानियों में डूबता चला गया सारे काम धाम छोड़कर एकबारगी इनको आदयोपांत पढ़ लिया फिर एहसास हुआ कि नहीं दोबारा पढ़ना चाहिए अपने बहन की तमाम सादगी के बावजूद इस संकलन की 25 में से हर कहानी प्रगल्भ है कुंदन सिंह परिहार एक लंबे अरसे से लिख रहे हैं उनकी रचनाएं बीच - बीच में पढ़ने का अवसर मुझे मिला है अक्षर पर्व में भी यदा कदा उनकी रचनाएं प्रकाशित होती रही है इस नए संकलन की रचनाओं से गुजरने के बाद एक अपराध बोध मन में जागा है कि एक समर्थ कथाकार का जैसा परिचय हिंदी जगत में ऐसा होना चाहिए था वैसा नहीं हो पाया है वह

शायद इसलिए कि श्री परिहार आत्मविश्लाघा से दूर रहकर अपना काम करते - चलते हैं वे यश और प्रतिष्ठा के लोभी नहीं है यह अनुमान लगाना कठिन नहीं है।

यह इन कहानियों को पढ़ाते हुए अनुभव कर सकते हैं कि कुंदन शेख परिहार की कहानियों में व्यंग्य की एक अंतरधारा प्रवाहित हो रही है यह क्या इसलिए है कि लेखक जबलपुर का निवासी है मैं जहां तक जानता हूं परसाई जी ने अपनी ओर से कोई गुरु परंपरा स्थापित नहीं की लेकिन इसे क्या कहिए कि जबलपुर के 100 150 किलोमीटर की परिधि में बसने वाले हर लेखक की कलम में व्यंग्य का पुट आ ही जाता है सतना, कटनी, दमोह, छिंदवाड़ा, इटारसी, पिपरिया, होशंगाबाद, गाडरवारा, नरसिंहपुर मंडला, सिवनी, बालाघाट का पूरा क्षेत्र जो मोटे तौर पर महाकौशल में नर्मदा के दोनों किनारे पर फैला हुआ है व्यंगय लेखन की एक पूरी जमात दिखाई देती है और जो सीधे - सीधे व्यंग्य लेखक नहीं है उनकी भी कोई रचना वक्रोक्ति का आश्रय लिए बिना पूरी नहीं होती।

इन कहानियों को पढ़ाते हुए दूसरी प्रमुख बात समझ में आती है कि कथाकार मानव मन के अंतरद्वदवो की सूक्ष्म पड़ताल करने में समर्थ है वह जानता है कि समाज में किस तबके का व्यक्ति किस परिस्थिति में किस तरह का व्यवहार करेगा मैं इसे परिहार जी के लिखने की खूबी कहूंगा कि वह कहानी कहते - कहते बहुत सामान से लगने वाले प्रसंग के माध्यम से चरित्र चित्रण कर देते हैं अपनी तरफ से कोई टिप्पणी नहीं करते मनुष्य मन के अनेक अनेक भाव मैत्री स्वार्थ परमार्थ उदारता का पड़ता पर निंदा पड़ोसी धर्म पारिवारिक संबंध अहंकार इत्यादि अंत आते - आते कुछ यूं व्यक्त होते हैं कि पाठक चमत्कृत हुए बिना नहीं रह सकता मुझे इन कहानियों को पढ़ाते हुए कई जगह ओ हेनरी और जैफरी आर्चर जैसे प्रसिद्ध कथाकारों की लेखन शैली का सहज स्मरण हो आया।

लेखक ने विभिन्न सामाजिक स्टारों और जीवन स्थितियों से विषय उठाए हैं इनमें कहीं व्यंग्य का भाव है तो कहीं कोई कहानी पाठक को गहरे विषाद से भर सकती है इनमें निम्न मध्य वर्ग को लेकर कुछ कहानी है जहां अंत में एक सहायता का बोध घेर लेता है तो कहीं उसे स्वार्थ बुद्धि के दर्शन होते हैं जिस पर मन में आक्रोश बढ़ता है एक कहानी है जिसमें पड़ोसियों के बीच आत्मीय संबंध है लेकिन अपनी अपनी सीमाएं हैं जिनके कारण चाह कर भी एक पड़ोसी परिवार दूसरे की मदद करने से बच निकलता है एक कहानी में मध्यवर्गीय पिता बेटे की फरमाइश के आगे लाचार

हैं इकलौते बेटी के इच्छा को पूरा करना ही पड़ेगा खासकर जब पत्नी भी उसका साथ दे रही हो फिर भले ही घर का बजट क्यों ना गड़बड़ हो जाए एक अन्य कहानी में एक व्यक्ति इसलिए परेशान है कि हाल हाल में रिटायर हुआ मित्र कहानी रूपए पैसे की मांग न कर बैठे लेकिन वह तो सिर्फ समय बिताने के लिए मिलना चाहता था जब यह भेद खुलना है तो पहले मित्र तनाव मुक्त हो जाता है।

भुक्कड़ डॉल पिकनिक के लिए तो ऐसी कहानी है जहां मध्य वर्ग की अपने से निचले तबके के प्रति सहज है हिकारत की भावना है लेकिन कहानी के अंत पर पहुंचने तक वह आत्मगलानी में बदल जाती है एक अन्य कथा में घर के कामकाजी लड़की की सुरक्षा को लेकर चिंता है लेकिन उसका कोई उपाय न खोज पाने की दविविधा भी है लेकिन लड़की की कमाई की भी आवश्यकता है ऐसे में जब वह कहती है कि आप चिंता मत कीजिए मैं स्वयं संभाल लूंगी तो पिता के मन से एक भारी बोझ उठ जाता है एक खुशमवार शाम कहानी में एक ऐसे दोस्त का चरित्र चित्रण है जिसे दोस्तों की सौगात में खाने - पीने के अलावा और कोई काम नहीं रहता वह समझने के लिए तैयार नहीं है कि जिस दोस्त के घर आया उसकी पत्नी बीमार है और उसे तीमारदारी की आवश्यकता है जब दोस्त साथ देने के लिए तैयार नहीं होता तो उल्टे इस पर इल्जाम लगा कर बाहर चला आता है कि बीवी की खिदमत में लगे रहो तुम खुदगर्ज हो खाने की आवश्यकता नहीं है कि यहां खुदगर्ज कौन है।

कांटाजों के संग्रह के शीर्षक कथा है तथा कुछ अन्य कहानियों में कथित बुद्धिजीवियों की खूब खबर ली गई है इन कहानियों की शैली व्यंगात्मक है कांटा में जबलपुर से कुछ लेखक एक कार्यक्रम के लिए दूसरे शहर जाते हैं एक उभरता हुआ लेखक भक्ति भाव से उनके साथ जुड़ गया है वह वरिष्ठ लेखकों की सेवा में पूरे समय लगा रहता है लेकिन यह लेखक है कि उसे युवक को कांटा समझते हैं उन्हें मन मारकर नवोदय लेखक के सामने सज्जनता का लबादा ओढ़ना पड़ता है जबकि उनके मन में इच्छा है कि किसी तरह यह टले तो सुबह खुलकर आपस में बातें कर सके यह पंक्तियां दृष्टतव्य है।

आते समय उसके सारे सेवा भाव के बावजूद उसकी उपस्थिति से हमें निरंतर असुविधा हुई थी वैसे यह थी कि हम सहज होना और खुलने चाहते थे तो हम उसकी उपस्थिति में नहीं कर पा रहे थे साहित्यकारों का सबसे प्रिय रस निंदा रस होता है कार्यक्रम में जो दिक्कत आ रहे थे उनमें से

कुछ के घटियापन का विस्तार से चर्चा करके हम सुखी और श्रेष्ठ अनुभव करना चाहते थे लेकिन उसे लड़के की उपस्थिति के कारण हम इस सुख से वंचित हो रहे थे प्रवीण जी साहित्य से आगे बढ़कर साहित्यकारों के निजी जीवन की कुछ अत्यंत अंतरंग बातों का जखीरा बहुत जतन से अपने पास रखते थे वह भी यात्रा का लाभ उठाकर हमें कुछ दुर्लभ ज्ञान देकर सुखी होने के लिए खास समस्या रहे थे लेकिन यह लड़का उनके लिए भी कांटा बना हुआ था हर कर हम सब भद्र ही बने रहे और सात को उसे ला दिए गए पवित्रता के लिए हुए अपनी - अपनी बर्थ पर सो गए।

इसका दूसरा पहलू है साहब किताब कहानी में देखने मिलता है जहां एक वरिष्ठ प्रोफेसर के साथ उनकी अनेक्षा के बावजूद एक अध्यापक उनकी सेवा करने का ढूंढ करता है इस कहानी का अंत कुछ इस तरह होता है।

उधर से डॉक्टर पाठक का जवाब आया डॉक्टर प्रकाश को पता चल गया है कि आप रिटायर हो गए इसलिए अब आपके प्रति उनका प्रेम खत्म हो गया है अब वह दूसरे पहुंच वाले लोगों की खोज खबर में लगे रहते हैं जिनका सत्कार किया जा सके आप उनके काम के आदमी नहीं रहे इसलिए आपको पत्र लिखकर पैसे बर्बाद नहीं करेंगे।

इसी तरह की एक और कहानी यवनिका पतन है कुल मिलाकर कुंदन सिंह परिहार आशवस्त करते हैं कि कथा लेखन के पारंपरिक सांचे के भीतर भी बिना बडबोलेपन, बिना विद्वता प्रदर्शन सहज सरल भाषा में वर्तमान यानी 21वीं सदी के जीवन व्यापार की कहानी आज भी लिखी जा सकती हैं।

स्व. ललित सुरजन, पूर्व सम्पादक देशबन्धु, अक्षरपर्व

जीवेत शरदः शतम्

संस्कारधानी के वरिष्ठ साहित्यकार परम श्रद्धेय डॉ कुन्दन सिंह परिहार जी को ई-अभिव्यक्ति परिवार की ओर से 85 वीं वर्षगांठ पर हार्दिक बधाई। ईश्वर से कामना है कि हम सभी को उनका स्नेह एवं आशीर्वाद सदैव मिलता रहे और उनकी लेखनी पर माँ सरस्वती सदैव विराजमान रहें।

हेमन्त बावनकर, संपादक ई-अभिव्यक्ति, पुणे (www.e-abhivyakti.com)

दैनिक अखबार पत्रिका द्वारा डॉ कुंदन सिंह परिहार का साक्षात्कार

(लोक प्रिय दैनिक अखबार पत्रिका द्वारा जुलाई 2019 में डॉ कुंदन सिंह परिहार का साक्षात्कार प्रकाशित किया था उनकी बातचीत के अंश)

सवाल - आपने पारदर्शी जीवन जिया है साहित्यकार के रूप में हम आपसे जानना चाहेंगे कि आज का युवा किस तरह अपनी रचनात्मकता को दिशा डी तकनीक उसकी कितनी मदद कर सकती है

जवाब - आज तकनीक ने बहुत प्रगति की है बहुत कम जो पहले नहीं हो सकते थे अब आसानी से हो रहे हैं कैसे किताबों का प्रकाशन महीना में होता था वर्षों लग जाते थे वह वास्तव में हो रहे हैं एक बार सी आई लेखक को कवियों की बहुत लोग दिख रहे हैं किताबें छप रहे हैं डिजिटल प्लेटफॉर्म भी उपलब्ध है लेकिन इससे भ्रम पैदा हो रहा है जो लेखक नहीं अभी भी अपने को लेखक समझ रहे हैं मैं उनका दोष नहीं दे रहा लेकिन असल में 10 - 20 उनके दोस्त है जो उनकी तारीफ करने लगते हैं क्योंकि वह खुद भी नहीं जानते हैं कि क्या लिखा जा रहा है साहित्य क्या है पढ़ने के प्रवृत्ति न होने से सारे भ्रम उत्पन्न हो रहे हैं नए लेखकों को सुविधा बहुत है छापने की प्रकाशित होने के सामने आने की लेकर जब तक अपने देश को वे समझेंगे नहीं समाज को समझेंगे नहीं अच्छा व्यवहार्थक लेकर नहीं कर पाएंगे सिर्फ थोड़े समय की दौड़ होगी फिर खुद उससे भी मुख हो जाएंगे अच्छा लेखन करना है समाज का कुछ भला करना है तो फिर थोड़ा इसके रोकर जो समझदार लोग आसपास है उनसे सलाह लेने चाहिए देश समाज को समझना चाहिए और परिपक्वता के साथ प्रौढता के साथ लिखे।

सवाल - लेखन और शैक्षिक गतिविधियों के साथ आपका जीवन गुजारा है 80 वर्ष की आयु में भी आप सक्रिय लेखन से जुड़े हैं यह प्लेटफार्म पर आप उपलब्ध है जब आप पहली बार प्रकाशित हुए थे अंधेरे में कंदीले कहानी के जरिए तब किस तरह की बेचैनी और अकलता थी कैसे आपकी पहली रचना सामने आई?

जवाब - लिखने का कारण मैं समझता हूं मैं पढ़ा बहुत है बचपन से और वही बचपन के पढ़ने का भराव था शायद वही सामने आया मैंने शरद चंद्र को पढ़ा उनकी जीवनी पड़ी वृंदावन लाल वर्मा का पूरा साहित्य पड़ा विशंभर नाथ शर्मा कौशिक सुदर्शन देवकीनंदन खत्री को पड़ा इसी वजह से किस्सागोई और कहानी लिखने की इच्छा जाहिर हुई धर्मवीर भारती ने धर्मयुग में पहली बार मुझे प्रकाशित किया कमलेश्वर ने सारिका में स्थान दिया इसी से समझ बड़ी ज्ञान रंजन मेरे साथ कॉलेज में थे वह लिखा करते थे और मुझे सुनाया करते थे वहीं से किस्सागोई यथार्थ की ओर मुड़ने लगी।

सवाल - ज्ञान रंजन आपके समकालीन है लेकिन आपके लिखे को पढ़ने से पता चलता है कि आपने अपने कथय और शिल्प में शैलीगत परिवर्तन करने की कभी कोशिश नहीं की निर्मल वर्मा और ज्ञान रंजन की तरह।

जवाब - निर्मल वर्मा बड़े लेखक थे उनकी शैली अनोखी थी बहुत महीन बनते थे और धीरे - धीरे पूरा वातावरण तैयार करते थे कि आप उसमें खो जाए मैं कहीं पढ़ा कि वह एक - एक शब्द के लिए घंटा इंतजार करते थे मुझ में इतना धैर्य नहीं है मैं अपनी बात जल्दी से जल्दी और बिना किसी आवरण के बिना किसी कन्फ्यूजन के लोगों तक पहुंचाने की इच्छा रखता हूं इसीलिए बहुत से अधिक सपाट तरीके से मैं बिना किसी अलंकार के लिखना पसंद करता हूं मेरी कहानी छोटी होती है तो बात में कहना चाहता हूं वह सीधे - सीधे लोगों तक पहुंच जाना चाहिए।

सवाल - आपके लेखन में एक विरोधाभास नजर आता है एक तरफ आप कथा साहित्य से जुड़े और व्यंग्य लेखन के क्षेत्र में सक्रिय हैं आपको संतोष तथा लेखन में मिला या व्यंग्य लेखन में?

जवाब - कहीं कोई विरोधभास नहीं है चेखव की जो कहानी विश्व स्तर की है, उनमें एक गिरगिट है इससे अच्छा व्यंग कहां मिलेगा उन्हीं की दूसरी कहानी नकाब इसका एक और श्रेष्ठ उदाहरण है प्रेमचंद के समकालीन विशंभर नाथ शर्मा कौशिक जो रिचानंद दुबे के नाम से व्यंग्य की चिट्ठी लिखते थे बाद में चिट्ठीयां बुक फॉर्मेट में सामने आए उनकी गंभीर कहानी ताई हिंदी की क्लासिक कहानियों में मानी जाती है यही बात यशपाल की महाराज की बीमारी और भारतेंदु जी की अंधेर नगरी में मिलती है बोन की ए जेंटलमैन फ्रॉम सैन फ्रांसिस्को चूड़ी की देख यह सभी कहानियां अपने में व्यंग्य समाहित किए हुए हैं और विसंगतियों पर प्रहार भी है परसाई जी ने भी कहा था व्यंग्य विधा नहीं है यह हर विधा में पाए जाते हैं

सवाल - आप मुंशी प्रेमचंद के लेखन से प्रभावित है उनका लेखन सामाजिक वर्ग भेद समानता और शोषण के विरोध में था लेकिन अब कहानी वैयक्तिक अंतरंगता और अंतर संबंधों पर ठहर सी गई है जबकि राजनीतिक और आर्थिक विद्पताओं पर प्रहार जारी है।

जवाब - हां समानता और वर्ग भेद गहरे हुए हैं सवाल यह है कि उन पर लिखा क्यों नहीं जा रहा है? मैं तो कहूंगा कि प्रेमचंद के श्रेणी के स्तर पर आप इसको रखेंगे हां परसाई जी ने सार्थक कोशिश की थी आज लोगों की वैयक्तिक जीवन शैली को लेखक कथन को में पिरो रहे हैं अपने - अपने मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ फिर सामाजिक शोषण और असमानता की तरह कौन देखेगा यह सब पूंजीवाद की कृपा है पूंजीवाद चाहता है कि जो सामाजिक समस्याएं हैं वास्तविकता है उनसे आप ना जुड़े। इधर - उधर ध्यान भटकता रहे आप मनोरंजन में रत रहे पूंजीवाद तभी सफल होता है जब असली समस्याओं से पूरी पीढ़ी को अलग कर दिया जाए।

सवाल - अपने अपने लेखन से रागात्मक संबंध को बहुत प्रश्रय दिया लेकिन आज यह सामाजिक जीवन में छिन्ह भिन्न हो चुके हैं?

जवाब - देखिए प्रेम और रब यह तो शाश्वत है अंत दर सुकून उसी में है लोग जीवन यापन के चलते परिवार से दूर हो रहे हैं पूंजीवाद और बाजारवाद का दबाव है लैपटॉप और कंप्यूटर में समय उलझ गया है शायद इसकी वजह भी यही है।

सवाल - लेखन में रुमानियत की कैफियत भी तो खत्म हो रही है दैहिक संबंधों में ठहराव नहीं रह गया है पश्चात शैली से हम क्यों दूर नहीं हो पा रहे हैं इतने लेखकीय के प्रयासों के बावजूद?

जवाब - देखिए मैं कह चुका हूं कि रोमांस और प्रेम की अहमियत है आहिस्ता रूप से इसमें मटका हो सकता है लेकिन रोमांस जीवन का बेस्ट पीरियड होता है जीवन का सर्वोत्तम कल होता है यह छूट रहा है तो तात्कालिक स्थिति है इसके जिम्मेदार है पश्चात प्रभावों की बात की जाए तो युवाओं को कुछ अच्छा दिख रहा है जिसे वह अपनाना चाहते हैं वहां खुलापन ज्यादा है यहां पाखंड ज्यादा है आज का युवा पाखंड और झूठ पसंद नहीं करता दोहरे चरित्र पसंद नहीं करता जटिलताओं और रूढ़ियों को पसंद नहीं करता इसलिए नहीं पीढ़ी को हम दोषी नहीं मान सकते।

सवाल - नव लेखन के लिए बड़ा प्लेटफार्म

जवाब - मैं यह बुक्स से जुड़ चुका हूं फेसबुक में अपने व्यंग्य डाल चुका हूं हमें बेस का लाभ मिल रहा है और जब तक पढ़ने की प्रवृत्ति रहेगी तब तक प्रशासन घरों का भविष्य भी रहेगा वैसे मुझे पुस्तकों में ज्यादा संतोष मिलता है।

सवाल - यह ऐसा दूर है जब कहानी पढ़ी नहीं सुनी जा रही है ऐसे में लंबी कहानियां का भविष्य क्या होगा सुना और पढ़ने दो अलग तरह की ग्राहता है आप क्या सोचते हैं पढ़कर ज्यादा अच्छे से महसूस किया जा सकता है या फिर सुनकर?

जवाब - लिखा जाए तो उपन्यास प्रेमियों से जरुर पढ़ेंगे और श्रेष्ठ लंबी कहानी तो हमेशा रहेंगे लेकिन अनावश्यक फैलाव से बचना चाहिए सुनने से बेहतर है पढ़कर महसूस करना सुनने से कुछ देर बाद मन भटक सकता है और लौटकर आप पीछे नहीं आ सकते क्योंकि कहानी पाठ आगे बढ़ चुका होता है पढ़ने में आप लौटकर भी आ सकते हैं तभी तो घरों में लोग शेल्फ में महान लेखकों की पुस्तक रखते हैं। जिन्हें हम बार - बार पढ़कर महसूस कर सकते हैं।

सहयोग - श्री रविकांत वर्मा

अगली पीढ़ी की फ़िक्र - कुंदन सिंह परिहार

डॉ. कुंदन सिंह परिहार

मेरा जन्म मध्य प्रदेश के छतरपुर जिले के ग्राम अलीपुर में हुआ जो 1947 तक एक रियासत थी हम अलीपुर के राजा साहब के संबंधी थे और मेरा जन्म राजा साहब की गढी में ही हुआ जहां हम रहते थे 1947 में रियासतें खत्म होने के बाद राजा साहब ने में एक - एक करके गढी से विदा किया पिताजी को नौगांव का अलीपुर हाउस मिला जहां पिताजी मुझे और मेरे बड़े भाई की शिक्षा के लिए पहले से ही रह रहे थे 1947 के बाद हम मुफलिसी की हालत में आ गए क्योंकि कुछ खेती की जमीन के अलावा आए का कोई जरिया नहीं था।

उन दिनों कस्बा में प्राइवेट स्कूल नहीं थे इसलिए नौगांव के सस्ते सरकारी हाई स्कूल से दसवीं पास करने में कोई लज्जा का अनुभव नहीं हुआ फिर इंटर और बी. ए. लिए छतरपुर के महाराजा कॉलेज में प्रवेश लिया तब वहां संस्कृत के प्रकांड विद्वान डॉक्टर हरिराम मिश्रा प्राचार्य थे बड़े सरल और छात्रों को बड़ा सनेह करने वाले कॉलेज के हॉस्टल में 4 साल बहुत अच्छे गुजरे हम हिंदू मुस्लिम एक ही कमरे में रहते थे और कई बार एक ही थाली में खाते थे इसलिए मन में कभी भेदभाव के बीच नहीं पड़े मेरा एक मित्र चरखारी उत्तर प्रदेश का सआदत था जो घर से संपन्न था मेरी कमजोरी स्थिति समझकर में घर से अतिरिक्त कपड़े सिल्वा कर लाता था और इसरार करके मुझे पहनने को देता था।

आर्थिक स्थिति के कारण बी. ए. के आगे पढ़ाई मुश्किल थी संयोग से इस साल कॉलेज में एक विषय राजनीति शास्त्र में एम. ए. खुल गया और मैंने मन से इसरार करके प्रवेश ले लिया लेकिन एक डेढ़ महीने बाद ही वह कोर्स बंद करने का आदेश आ गया और हम 15 20 छात्र सड़क पर आ गए।

फिर स्थितियों का चक्रव्यूह मुझे रीवा ले गया जहां मैंने एम. ए. अंग्रेजी साहित्य में प्रवेश लिया तब अंग्रेजी साहित्य में एम. ए. करना बहुत कठिन माना जाता था किस्मत ने साथ दिया और मैं अच्छे अंकों से पास हो गया तब अंग्रेजी विषय का महत्व था इसलिए व्याख्याता की नौकरी पाने

में दिक्कत नहीं हुई 3 साल तक रीवा नीमच अमरावती के महाविद्यालय में अध्यापन के बाद 1961 में जबलपुर के गोविंद राम शेख सरिया महाविद्यालय में नियुक्ति मिली और वहीं से 40 वर्ष की सेवा के बाद 2001 में प्राचार्य पद से सेवा निवृत्ति हुई।

स्कूल और कॉलेज के दिनों से ही पढ़ने का शौक था हमारे घर में काफी किताबें और पुरानी पत्रिकाएं थी चांद और विशाल भारत के अंक थे चांद का फांसी अंक भी था तभी प्रेमचंद और शरद चंद्र के अतिरिक्त विशंभर नाथ शर्मा कौशिक सुदर्शन वृंदावन लाल वर्मा और देवकीनंदन खत्री को पढ़ा अजीम बेग चगताई शौकत थानवी और शफीकुरहमान के हास्य लेख भी पढ़े तब हास्यकार जी.पी. श्रीवास्तव भी बहुत मशहूर थे उनकी किताबें भी पड़ी बाद में शेक्सपियर के अलावा डिफेंस, हार्डी, एमिली ब्रोंटे, स्टीनबेक, टालसटाय, चेखव, गोरकी, डॉस्टायवसकी, बूनिन, हेमिंग्वे, मोपासां, जैक लंडन को पढ़ा बर्नार्ड शॉ और ऑथर मिलर के नाटक पड़े इसी दुनिया में रमते कभी लिखने के बीज पड़े।

लेखन की शुरुआत कायदे से जबलपुर आने पर हुई कहानी और व्यंग्य दोनों ही एक साथ लिखें वही सिलसिला अब भी जारी है 1972 या 74 में सारिका के नवलेखन अंक में कमलेश्वर में मेरी एक कहानी सुलह छापी उसी के आसपास धर्म युग में कहानी अंधेरे की कंदीले छपी जो काफी पसंद की गयी तभी लोकप्रिय पत्रिका साप्ताहिक हिंदुस्तान में व्यंग्य जगी हुई अंतरात्मा का उपद्रव छापा यह भी काफी पढ़ा गया तब लोगों में पढ़ने की प्रवृत्ति थी जो अब दुर्लभ हो गई है।

इस तरह सिलसिला चल पड़ा फिर ज्यादातर पत्रिकाओं और अखबारों ने मेरी रचनाएं छापी व्यवसायिक पत्रिकाओं के अलावा लघु पत्रिकाओं में भी तब पत्रिकाओं के विशाल संख्या थी और सभी में साहित्य को सम्मान पूर्ण जगह मिलते थे योजना जैसी पत्रिका तक कहानी छपती थी अखबार भी बहुत थे और सभी साहित्य को जगह देते थे अब संडे संडे मिल जैसे अखबार विदा हो चुके हैं उसे वक्त पत्र पत्रिकाएं इतनी थी की रचना कहीं ना कहीं जगह पा ही जाती थी अब अखबारों ने साहित्यिक रचनाओं के लिए दरवाजे बंद कर लिए हैं जो छपते हैं उनके लिए वह फिलर से ज्यादा कुछ नहीं होती संपादकों की नजर में लेखक की कोई हैसियत नहीं है।

जबलपुर में कॉलेज में वरिष्ठ कथाकार ज्ञान रंजन जी मेरे सहकर्मी थे वह मुझे एक साल पहले कॉलेज में आए थे उनके माध्यम से प्रगतिशील लेखक संघ से परिचय हुआ प्रलेख के माध्यम से कमला प्रसाद, मलय रमाकांत श्रीवास्तव, ललित सुरजन, पुन्नी सिंह, देवी शरण ग्रामीण, भगवत

रावत, राजेंद्र शर्मा जैसे साथियों से परिचय हुआ। प्रलेस के कारण बाबा नागार्जुन, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल, भीष्म साहनी जैसे महापुरुषों को निकट से देखने और सुनने का सौभाग्य मिला जिसे मैं जीवन भर की पूंजी मानता हूं। ऐसे सरल, आडम्बर हीन लेकिन उसूलों के पक्के लोग कहां मिलते हैं परसाई जी मेरे पहले घर के पास ही रहते थे कभी भी उनसे मिलने पहुंच जाता था उनके दरवाजे सबके लिए हमेशा खुले रहते थे उनसे कोई मुलाकातें मेरे जीवन की निधि है।

मेरा पहला कहानी संग्रह और पहले व्यंग्य संग्रह दोनों 1982 83 के करीब दिल्ली से प्रकाशित हुए उसे वक्त प्रकाशक मध्य प्रदेश के लेखकों को तलाशते थे क्योंकि मध्य प्रदेश में प्रदेश के लेखकों की पुस्तकों की सरकारी खरीद होती थी अब प्रशासन कठिन हो गया है मेरे अगले दो कहानी संग्रह स्वर्गीय शिव कुमार सहाय ने परिमल प्रकाशन इलाहाबाद से प्रकाशित किया बड़े भले व्यक्ति थे चौथ कहानी संग्रह रामकृष्ण प्रकाशन विदेश से 2004 में आया फिर लंबे अंतराल के बाद पांचवा कथा संग्रह पिछले वर्ष साहित्य भंडार इलाहाबाद में प्रकाशित किया।

पहले व्यंग्य संग्रह के प्रकाशन के बाद दूसरा पिछले वर्ष उदय पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली से प्रकाशित हो सका जिसका कारण मेरे द्वारा पर्याप्त प्रयास की कमी ही हो सकता है तीसरा संग्रह वर्जन साहित्य पीठ नई दिल्ली से इस वर्ष प्रकाशित हुआ युद्ध पर इस बीच कहानियां और व्यंग्य का पत्र पत्रिका में प्रशासन निरंतर होता रहा अब तक 150 से अधिक कहानी और 200 से अधिक व्यंग प्रकाशित हो चुके हैं।

मेरे पहले कथा संग्रह का फ्लैट मैटर ज्ञान रंजन जी ने लिखा था पहले व्यंग्य संग्रह के फ्लैट मटर के लिए मैंने प्रसाद जी से निवेदन किया उसे वक्त में अवसाद में चल रहे थे किसी से बात नहीं करते थे उन्होंने मेरी बात का कोई उत्तर नहीं दिया मैं स्थिति को समझ कर लौट आया बाद में जब भी स्वस्थ होकर रायपुर से लौटे तो उन्होंने खुद मुझे पांडुलिपि मंगाई और फ्लैप मैटर लिखा।

अब उम्र के 80 पर कर गया हूं सपने और प्रसिद्धि पाने की ललक से काफी पहले मुक्त हो चुका हूं लेकिन पढ़ने और लिखने का क्रम जारी है अब उन्हें अखबारों पत्रिकाओं को रचना भेजता हूं जिसे पुराने संबंध है या जो मुझे जानते हैं बीच - बीच में नए पुराने पत्नी व्यंग फेसबुक में डाल देता हूं क्योंकि यह पाठकों तक पहुंचाने का सबसे सुलभ माध्यम में तुरंत कई पाठकों की प्रतिक्रिया भी मिल जाती है नए संबंध भी बनते हैं।

हाल में भाई रमेश सैनी और जयप्रकाश पांडे ने मुझे व्यंग समूह में जोड़ लिया है यह समूह इन लेखकों ने जबलपुर की पुरानी प्रतिष्ठित पत्रिका व्यंग्य की याद में बनाया है इसके संपादक स्वर्गीय रमेश शर्मा निशिकार श्री राम आयंगार और महेश शुक्ला के समूह में लगभग 15 व्यंगकार है प्रति मन बैठक होती है जिसमें प्रत्येक लेखक अपना नया व्यंग पड़ता है इससे रचनाशीलता को प्रोत्साहन मिलता है मैंने अपना तीसरा व्यंग्य संग्रह जबलपुर के साथी व्यंग कारों को ही समर्पित किया है।

अपनी तो जैसे तैसे कट गई अब फिक्र अगली वीडियो की है उनके सामने बड़े संकट खड़े हैं घटते जल का संकट हवा पानी के जहरीले होने का संकट रोजगार का संकट चौड़ी होती आर्थिक असमानता का संकट सांप्रदायिक भेदभाव का संकट जल प्रतिनिधियों की उदासीनता और स्वास्थ्य करता का संकट शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं के महंगी और स्तरहीन होने का संकट यानी संकट ही संकट प्रार्थना की जा सकती है कि हमारा प्रजातंत्र सच्चा प्रजातंत्र बने और हमारे जैन प्रतिनिधि सच्चे बनाकर प्रजा की समस्याओं के समाधान में संलग्न हो फिलहाल तो यह दूर की कौड़ी लगती है।

(व्यंग्य यात्रा अंक 60 से साभार)

(डॉ. कुंदन सिंह परिहार, अमेरिका वासी मित्र प्रो.पाठक और प्रख्यात कथाकार श्री ज्ञानरंजन)

व्यंग्य संकलन की समीक्षा - "वह दुनिया और अन्य कहानियां"

डॉ. निशा तिवारी

कुंदन सिंह परिहार का 1993 में प्रकाशित कहानी संग्रह दुनिया और अन्य कहानियां वस्तुत इस दुनिया की रोजमर्रा के छोटे - छोटे घटनाओं के ऐसी तस्वीर इसके रंग कुछ गहरे कुछ हल्के को चटकीले और कुछ धुले धुले से हैं यह तस्वीर ऐसी है जो दर्पण का भी काम देती है जिसे देखते समय हम स्वयं प्रतिबिंबित हो जाते हैं छोटी - छोटी 15 कहानियों का यह संकलन हमारी और एक इशारा भी है और एक साफ सुथरा बयान भी है कि देखो तुम कहीं बेनकाब तो नहीं हो रहे तुम्हारे मुखोटे ज्यादा देर चल नहीं सकते पहचान लो अपने आप को साक्षात कर लो अपने आप से वह दुनिया सच पूछो तो यह दुनिया है मायावी उड़ानों से भरा ड्रीमी फंतासी का आकाश नहीं बल्कि रियलिटी की ऐसी कठोर धरती है जहां अपनापन भी है दूरी भी है चक्कर में है आस्थाएं भी, कुंठाएं भी, एडजस्टमेंट भी, संत्रास भी, भक्ति भी मासूम चेहरे भी, इनविजिबल मैन भी।

वह दुनिया और अन्य कहानियों की सभी कहानियां भौतिकता की दूरी पर संदर्भों और हादसों उकेरती है तथा चित्रों को भौतिक उपलब्धियां असंतोष की सापेक्षता में श्रेणी दर श्रेणी मूल्यांकित करते चलती है यह मूल्यांकित स्तरीयता इतनी सहज है कि पाठक को निजी से जैसी लगती है बेमालूमियत किया सादगी कहानी के चरित्र और संदर्भ से पाठक को अनायास जोडी चलती है।

इस संग्रह की कहानियों का कैनवास बड़ा नहीं है किंतु वैविंध्यपूर्ण है अर्थ के मूल सूत्र से जुड़े होकर भी वे अलग - अलग हादसों के रचना परिषद के माध्यम से मानवीय मूल्यों को कहीं तलाश थी कहीं उभरती और कहीं क्षुबध करती है। अर्थवैषमय से उत्पन्न विभिन्न वर्गों की विशेषता निम्न वर्गों की समस्याओं का पारदर्शी पर इन कहानियों में उभर कर आया है।

संग्रह की पहली कहानी दुनिया अर्थ भाव से कुंठित त्रिवेणी के रिएक्शन को सामाजिक जाती भाव की नई संज्ञा देती है मैं गरीब हूं इसलिए हमारी जाती है अलग - अलग हो गई जातियों का यह अलगाव यदि संपन्न लोगों के मन में दरिद्रों के प्रति एक अपेक्षा भाव रखता है जानवरों के समान जूठन पर जीने वाला प्राणी जिसके घर को कूड़ा घर बनाकर स्वयं के साडे गलेपन को परोपकार के नाम पर थोपने की उनकी आम आदत है तो निम्न वर्ग की जागृति ऐसे संबंधों को एकबारगी

तोड़ कर रख देती है, क्योंकि हैं समझा जाकर कूड़ा बटोरना उन्हें सहन नहीं दरिद्र नारायण कहानी में दो वर्गों के बीच के पुल के टूटन समाज के वर्गीय अलगाववाद को रेखांकित करती है इस अलगाव को जोड़ने की कोशिश संपन्न वर्ग द्वारा यदि की भी जाती है तो महज अपने स्वार्थ के लिए पूंजी के साथ श्रम का अभाज्य संबंध है पूंजी सदैव श्रम को दासत्व के शिकंजे में कस लेती है एक नेक काम कहानी स्वार्थ के लिए दासत्व का उपयोग है श्रम के लाचारी बेटी के भविष्य के लिए पिता को कठोर बना देती है किंतु चिरंतन मातृत्व इसे झेल नहीं पाता। मीनू की मां को समझ में नहीं आ रहा था कि महरी खुश होने के बजाय रो क्यों रही थी वाक्य अंतर विरोध के माध्यम से प्रभाव का साधन बनता है अभावग्रस्त निम्न वर्ग के भी अपने सपने होते हैं महत्वाकांक्षाएं होती हैं हृदय कहानी में होटल में काम करने वाले दौलत के अंगूठे अंततः ठंडे पड़ जाते हैं। इस ठंडेपन की पराकाष्ठा तो तब होती है जब अभाव और महत्वाकांक्षा लड़ते - लड़ते थककर चूर हो जाते हैं और महत्वाकांक्षा पराजय को उदासीनता में बदल देती है जिंदगी की जरूरत है और दबाव वी.आई. पी. कहानी में यही पराजित चिंतन लोकनाथ को आत्मिक बल देता है टूटते बिखरते जीवन के तल्ख अनुभव व्यक्ति को पलट नहीं करते आत्म बल का संचय लोकनाथ में इस प्रकार अभिव्यक्त होता है यह भी टूट गया तो कुछ भी करने लायक नहीं रहेंगे आश्चर्य होता है कि भाव की प्रेत नगरी में भी स्वर्ग का जीवंत उल्लास कैसे उठ सकता है विरोधाभास के रूप में विवेचित संयुक्त उन पक्की हवेलियां पर व्यंग है जहां स्वर्ग का निर्मल निराला एकांत शांति और उल्लास का मजाक उड़ाता है।

परिहार जी की कहानी का अंदाज समाधान मूलक नहीं है वे अंतर विरोधों के माध्यम से समस्याओं को उभारते हैं और उनका हल ढूंढने के लिए पाठक को विचारों के वीथी में छोड़ देते हैं सुविधा भोगी समाज विचार भ्रष्ट कर्मचारियों द्वारा प्राप्त सुविधाओं के बहती गंगा में स्वयं हाथ धोना चाहता है उनकी यह हिस्सेदारी हिस्सेदारी कहानी में नंद को विचित्र स्थिति में स्थापित करती हैं बड़े भले आदमी साबित हो रहे थे नंद साहब शायद मूर्ख भी लेकिन वह मोहल्ले के संरक्षक के रूप में बंटी अपनी छवि पर मंत्र मुगध थे भ्रष्टाचार एक सम्मोहन है जिसे उसका फल प्राप्त हो जाता है वह उनमत होता है, जिसे नहीं मिलता, वह जीभ चाटता रहता है ऐसा लोक व्यक्ति भ्रष्ट की पूछ पकड़कर वैतरणी करनी पार करना चाहता है एक नए समाज दर्शन को यह कहानी उजागर करती है भाई खाते तो सभी है लेकिन सोच समझ कर खाना चाहिए।

पिछले दशक की कहानियों का मूल स्वर भौतिकताजन्य विषमताओं और उसमें टूटे घिसते मानवी मूल्य का रहा है किंतु परिहार जी की कहानियों के मूल संवेदना भौतिकता में जड़ी बूट हो जाने

की नहीं है बेचहरा कहानी में यदि जोगिंदर कहता है बिना पैसे के जिंदगी की जरूरत है पूरी नहीं हो सकती तो राजी का यह कथन पैसा जरूर चाहिए सवाल सिर्फ यह है कि आदमी की तरह कमाया जाए या केंचुए लोमड़ी और सूअर की तरह लोमड़ी सूअर चेहरा पैसे वालों पर देखा आक्रोश व्यक्त करता है और आदमी के गम होते चेहरे के प्रति वितृष्णा उत्पन्न करता है नई साड़ी का आदमी वह चेतन का शिकार है दमदार चौपाइयां बनाकर दर्शन लाल की तरह समूचे आदमीयतता को निकल रहा है ऐसी मुलाकात गिरावट के बीच भी लेखक हताश नहीं है तभी तो संकट कहानी के रईसजादे दीपक में गरीबों के प्रति सहानुभूति और उदारता की मध्यम लौ टिमटिमाती है।

अर्थ के त्वरित वेग में सामाजिक पारिवारिक संबंध दिन के की तरह बह जाते हैं रिश्तो के बदलते तेवर स्त्री को आत्मनिर्भर बना देते हैं और पारंपरिक लोन सलोनी स्त्री घूंघट में दबे फूल के पंखुड़ियां नाच कर एक का एक बाइसिकल पर सवार होकर सड़क की रफ्तार मिलाने लगती है बाइसिकल कहानी में स्त्री का आत्मसम्मान रिश्तों की पाखंडी बुनियाद को खोखला करता है रिश्ते क्षण क्षण करवट भी बदलते हैं डिग्री पाने के लिए जीविका पाने के लिए अथवा और कुछ हासिल करने के लिए यह सब पाने के लिए बहुत खुदगर्ज और बेशर्म बनना पड़ता है जो यह सब समेट लेने के लिए उसे दुनिया में एडजस्ट नहीं कर पाता वह मिसफिट है दलदल कहानी में एडजस्टमेंट के कुछ नुस्खे हैं और मिसफिट होने की विवश छटपटाहट भी संस्कार कहानी का जागीरदार ऐसे नुस्खे से परिचित है सफलता की पूंजी भी उसी के हाथ में है।

परिहार जी की कहानियों का कथन इमोशनल नहीं है यथार्थ की जमीन से उगता है और भक्त भोगी की घटनाओं छितरा जाता है लेखक प्रत्यक्ष रूप से स्वयं इंवॉल्व ना होकर भी प्रत्येक घटना और चरित्र की बुनावट में कहीं भीतर से जुड़ा होता है तभी उनके सघन प्रभविष्णुता पाठक को झकझोर देती है कहानी कहानी से भी उठाई जाती है और आंखों देखे हाल की तरह घटनाओं को संयोजित करती चलती है यथार्थ अनुभवों की कहानी बाध्यता सेंसेशंस को ग्लूमी वातावरण ना देकर बहुत स्वाभाविक और विश्वसनीय बनाती है किस्सा गोई के बदले कहानी की टेक्निशियत यतकिंचित प्रतिक के माध्यम से मूल कथय को उभारती हुई अतिरंजना के दोष से मुक्त हो जाती है। संस्मरणात्मक तकनीक के भीतर से कहानी कला को समझने का परिहार जी का प्रयास पर साइन जी के कहानी शिल्प के निकट प्रतीत होता है बिना किसी गुहय तकनीकी लटके झटके के यह कहानी सहज और साफ सुथरी है वर्तमान से जुड़ी होकर भी पुरानी सोंधी सोंधी सुभाष के प्रति आकर्षण इन कहानियों में है।

रफ्ता रफ्ता बढ़ चले हम दुनिया की सैरगाहों में

मंजर नया इल्म सभा का जोर पर खुशबू उसी जमाने की।

डॉ. निशा तिवारी, लेखिका एवं पूर्व प्राचार्य, शा. मानकुवर बाई कॉलेज, जबलपुर

कहानी और कहानीकार पर सापेक्ष के सम्पादक महावीर अग्रवाल के सवाल

श्री महावीर अग्रवाल

सवाल - अब तक छपी कहानियों में कौन सी कहानी आपको अधिक प्रिय है और क्यों?

जवाब - दरअसल मुझे अपनी कोई एक कहानी प्रिय नहीं है मुझे अपनी सभी कहानियां फ्री है जिनमें मैं ईमानदार, निश्चल लोगों के जीवन संघर्ष का चित्रण करने में किसी हद तक सफल हुआ हूं अपने पहले संग्रह की फफूंद, अंतर, वापसी, चैन के दुश्मन, तीसरा बेटा, और दूसरे संग्रह की हत्या शहादत खेल बोझ बिरादरी मुझे प्रिय है। बाद में पल में प्रकाशित कहानी वह दुनिया भी अच्छी लगती है मुझे अपनी वह कहानी प्रिया है जिनमें मैं मुख्य पात्रों के साथ तादमय स्थापित कर पाता हूं। मेरी कोशिश रहती है कि डिफेंस की तरह ऐसे पात्र बनो और ऐसे कार्य लिखो जो सहज ग्रहय होने के साथ कुछ करने में समर्थ हो।

सवाल - अच्छा यह बताइए आपकी पहली कहानी कब और किस पत्रिका में छपी?

जवाब - मैं सारिका के नव लेखन विशेषांक में सुला कहानी छपी थी किंतु उससे पूर्व में सारिका के साहसिक कहानी प्रतियोगिता में कहानी पर पुरस्कार मिला था और वह कहानी सारिका में प्रकाशित भी हुई थी।

सवाल - आप कहानी क्यों लिखते हैं?

जवाब - कहना मुश्किल है कि मैं क्यों लिखता हूं लगभग 25 साल से कहानी लिख रहा हूं तब पत्रिकाओं की खास तौर से लघु पत्रिकाओं का ज्ञान नहीं था। लिख लिख कर रखना जाता था से ही रचनाओं का ठीक से प्रकाशन हो पाया इतना कह सकता हूं की चीजों के प्रति मेरी प्रतिक्रिया तीखी होती है भावुकता भी शुरू से रही इन्हीं बातों से कहानी लेखन की शुरुआत हुई धीरे - धीरे अति भावुकता से मुक्ति पाई और चीजों को उनके सही परिप्रेक्ष्य से देखना शुरू किया इस प्रक्रिया में प्रगतिशील लेखक संघ की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। पाखंड, उत्पीड़न, शोषण, अन्याय मुझ में

रिवोल्ट पैदा करते हैं। इन्हीं सबके प्रति अपना विद्रोह प्रकट करने और स्वस्थ मूल्य के स्थापना के लिए लिखता हूं इसलिए कहानियों के पूरक के रूप में व्यंग्य भी लिखता।

सवाल - कहानियों में कथ्य और कलात्मक संतुलन की कोई सीमा तय होनी चाहिए या कहानी कथ्य प्रधान होनी चाहिए।

जवाब - मैं कथ्य प्रधान कहानी लिखता हूं और कथ्य प्रधान कहानी को ही महत्व देता हूं इसलिए मुझ पर सपाटबयानी का आरोप भी लगता रहा है जिससे मुझे कोई परहेज नहीं है यदि समाज के बदलाव में आज कहानी की कोई भूमिका है तो कहानी को कथ्य प्रधान ही होना चाहिए कल का प्रयोग उतना ही होना चाहिए जितनी कहानी को कहानी बनाने के लिए जरूरी हो कला को कथ्य भाभी नहीं होना चाहिए यदि कथाकार का काम समाज से लेकर समाज को देना है तो कल की भूमिका अपने आप सीमित हो जाती है।

सवाल - कहानी की भाषा के संबंध में आपके विचार?

जवाब - कहानी में मैं बोलचाल की भाषा को उचित समझता हूं बोल चाल भी भाषा ही कहानी को लोगों के ज्यादा नजदीक ला सकती है रूदन करना की जगह में रोना शब्द को ज्यादा पसंद करूंगा इसलिए मैं कहानी में अनावश्यक शब्द भी नहीं आने देता पत्रों के नाम भी ऐसे रखता हूं जिनकी तरफ पाठक का ध्यान कम ही जाए और कथा के प्रभाव में बाधा ना आए मेरा उद्देश्य ज्यादा पाठकों तक पहुंचना है और यह तभी संभव है जब कहानी की भाषा सहज हो मैं कहानी में पठनीयता को बहुत महत्व देता हूं। यदि कहानी लेखक को बंद सके तो अपनी बात आसानी से संप्रेषित भी की जा सकती है।

सवाल - क्या लेखन के कारण आपको व्यक्तिगत जीवन में कभी संघर्ष का सामना करना पड़ा कोई अविस्मरणीय घटना।

जवाब - अभी तक तो लेखन के कारण कोई कठिनाई नहीं आयी है कोई अविस्मरणीय घटना भी नहीं हुई है।

सवाल - आप किन कथाकारों से अधिक प्रभावित रहे हैं?

जवाब - शुरू में शरद चंद्र का प्रभाव काफी रहा फिर प्रेमचंद वृंदावन लाल वर्मा कौशिक को पढ़ा। फिर जोला, गोकी, चेखव, दास्तायवस्की, गोगोल, हेमिंग्वे बातजाक, को। चेखव और हेमिंग्वे से मैं बहुत प्रभावित हूं।

सवाल - नए कहानीकारों की कुछ उल्लेखनीय कहानियों के साथ कथाकारों के नाम भी बताइए अपनी दृष्टि से।

जवाब - नई कहानीकारों के भाव से कहानियां अच्छी हैं असगर वजाहत, स्वयं प्रकाश, पंकज बिष्ट, उदयप्रकाश, संजीव की बहुत सी कहानी अच्छी है इधर मनोज रुपाड़ा की दफन प्रेम कुमार मणि की.... विनोद मिश्रा की कथा संजय की भगदत का हाथी तारा पांचाल की टिक्स जैसी कहानियों ने मुझे प्रभावित किया है सभी पत्रिकाओं और सभी कहानियों को पढ़ पाना संभव नहीं है।

सवाल - क्या रचनाकार के लिए वैचारिक प्रतिबद्धता का होना आप जरूरी मानते हैं ? यदि हां तो क्यों?

जवाब - लेखक के लिए वैचारिक प्रतिबद्धता जरूरी है बिना स्टैंड लिए क्या लिखा जाएगा पीड़क और पीड़ित दोनों के गले में हाथ डालकर कैसे चला जा सकता है? सबके कल्याण के बाद सुनने में अच्छी लगती है लेकिन व्यवहार में संभव नहीं है फिर प्रतिबद्धता लेखक को एक समूह से जोड़ती है दुनिया के बेहतरीन की लड़ाई के लिए समूह चाहिए कम से कम अकेलेपन संत्रास जैसी व्याधियों तो दूर रहती हैं।

सवाल - कहानी के साथ - साथ और किस विधा नाटक उपन्यास कविता में लिखना आपको अच्छा लगता है।

कहानी के अलावा नाटक लिखने की इच्छा होती है लेकिन अभी तक लिख नहीं सका उपन्यास लेखन को मैं कहानी लेखन के बाद की अगली पृथ्वी मानता हूं सार्थक और व्यापक विषय मिलने पर जरूर लिखूंगा।

सवाल - रूस और फ्रांस की क्रांति के समान ही आज की बदलती हुई परिस्थितियों में लेखन द्वारा सामाजिक वैचारिक और कांतिकारी परिवर्तन संभव है?

जवाब - भारत में सिर्फ लेखन द्वारा सामाजिक वैचारिक और क्रांतिकारी परिवर्तन की संभावना कम ही है अव्वल तो गंभीर साहित्य कितने पाठकों तक पहुंचता है? कौन है उसके पाठक? वही थोड़े से मध्यम वर्ग की लोग जिन्हें खुद कोई कांति नहीं करनी है कुछ लेखक अपनी कहानियों में क्रांति कर रहे हैं और खुश हो रहे हैं लेकिन उन्हें यथार्थ से साक्षात्कार करने की फुर्सत नहीं है आंध्रा में कैद कर दिया जाता है और कोई आवाज नहीं उठाती क्रांति के लिए या तो लेखक अपना अभी छात् आंध्रा में कैद कर दिया जाता है और कोई आवाज नहीं उठाती क्रांति के लिए या तो लेखक अपना अभी जात्य उतार कर साहित्य को जनता तक लाइन या फिर लेखक के साथ एक्टिविस्ट बने जैसा बहुत से विदेशी लेखकों ने किया कागज पर क्रांति करके एक दूसरे के पीठ ठोकने से क्या बनने वाला है? जिस देश में 30% लोग ही साक्षरों वहां सिर्फ साहित्य के बल पर क्रांति कैसे होगी? शिक्षित लोगों के भी अपने न्यस्त स्वार्थ बन जाते हैं बदलाव में उनके दिलचस्पी अपने हितों को सुरक्षित रखने के बाद ही पैदा होती है सर टेलीविजन जैसे माध्यम लेखन पर माया का जादू डाल रहे हैं क्रांतिकारी लेखन और पैसा कमाओ लेखन तो साथ - साथ नहीं चल सकते।

सवाल - रचनाकार के लिए सामाजिक दायित्व का बोध बहुत जरूरी माना जाता है। सांप्रदायिक दंगों की इस आग को बुझाने में लेखक को अपनी भूमिका किस रूप में अदा करनी चाहिए?

जवाब - सांप्रदायिक देंगे अब साधारण नहीं रहे कि आसानी से हल हो जाए उनके पीछे अब तरह - तरह की शक्तियां कम कर रही हैं कई बार खुद सत्ता उन्हें बनाए रखना चाहती है बातों को समझे बिना लेखन करना कागज बर्बाद करना है सांप्रदायिक दंगों के पीछे आर्थिक कारण भी होते हैं इसलिए लेखक को लेखन के अलावा जरूरत पड़ने पर समाज के बीच भी खड़ा होना पड़ेगा जबलपुर के परसाई जी ने..... मैं दंगों को रोकने के लिए जुलूस का नेतृत्व किया और अखबारों के संपादकों को विश्वास में लेकर सही रिपोर्टिंग करायी। इस तरह की भूमिकाओं के साथ लेखन को जोड़े बिना सांप्रदायिकता को रोकने में सफलता नहीं मिलेगी सरकार की गलत नीतियों का विरोध करना भी जरूरी होता है।

श्री महावीर अग्रवाल, सापेक्ष के संपादक

डॉ. कुंदन सिंह परिहार के 85वीं वर्षगांठ पर

(वादमुग्धता एवं विमर्शप्रियता से मुक्त
संवेदनशील कहानियों के कहानीकार डॉ. कुंदन सिंह परिहार)

श्री राजेन्द्र सिंह गहलौत

वर्तमान साहित्य जगत में विशेष विचारधारा के पोषण, वादमुग्धता एवं विमर्शप्रियता के चलते लगातार ऐसी कहानियां लिखी जा रही है जो पाठकों हेतु उबाऊ एवं अपठनीय तो हैं ही साथ ही अपने कहानीपन, किस्सागोईपन के गुणों से भी दूर होती जा रही है। उस पर तुर्रा यह कि कतिपय प्रतिष्ठित कहानीकार पाश्चात्य शिल्प का अंधानुकरण करते हुए शिल्प की कलाबाजियां दिखा रहे हैं तो कुछ जादूई यथार्थ का जादू जगा रहे हैं इन सबके बीच कब कहानियों के आम पाठक उन कहानियों से दूर होते चले गये पता ही नहीं चला। इन सब स्थितियों के बीच डॉ. कुंदन सिंह परिहार की कहानियां वादमुग्धता एवं विमर्शप्रियता को दरकिनार कर पूरी संवेदनशीलता के साथ अपने महत्वपूर्ण कथ्य को एक प्रभावशाली कथानक में प्रस्तुत कर आम पाठकों को राहत पहुंचाती है, उन्हें प्रभावित करती है तथा उनके बीच लोकप्रिय होती है। परिहार जी की कहानियां सहज, सरल भाषा एवं सीधे साधे शिल्प में पाठकों से संवाद करती हुई आसानी से अपने रोचक कथानक में महत्वपूर्ण कथ्य को उन तक संप्रेषित कर देती है। यही कारण है कि प्रतिष्ठित व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई ने उनकी कहानियों से प्रभावित होते हुए कहा था - " परिहार के पास तीखी नजर और प्रगतिशील दृष्टिकोण है..... बहुत सरल भाषा और बनावटहीन सहज शैली में लिखी गई उनकी कथाये केवल मनोरंजन नहीं करती बल्कि एक दर्पण है जिसमें हमारे जीवन का विकृत चेहरा दिखता है। "

डॉ. परिहार ने अब तक लगभग 200 कहानियां एवं 200 व्यंग्य लिखे हैं। उनके 7 कहानी संग्रह एवं 5 व्यंग्य संग्रह प्रकाशित हो चुके है तथा उनकी रचनाएं देश की लगभग हर प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्रिका में प्रकाशित हो चुकी है। सन् 1994 में म. प्र. साहित्य सम्मेलन द्वारा उन्हें "वागीश्वरी पुरस्कार" तथा सन 2004 में राजस्थान पत्रिका के " सृजनात्मक पुरस्कार" से पुरस्कृत कर सम्मानित किया जा चुका है। परिहार जी अपनी कहानियों के पात्रों के बारे में कहते हैं -" मेरे पात्र बड़े कमजोर, निश्छल और भोले भाले है, ईमानदार और आसानी से ठगे जाने वाले लोग हैं। वे बिना कोई हलचल मचाये दुनिया में आते हैं और बेनाम, ख़ामोशी से विदा हो जाते है। " ऐसे

निरीह, निश्छल लोगों को अपनी कहानियों के पात्र बनाना कहानीकार परिहार की संवेदनशीलता का परिचायक है।

परिहार जी के उपरोक्त कथन की जांच परख करते हुए यदि उनकी कहानियों को विश्लेषित करें तो उनकी "जोकर" कहानी का भोलाभाला दद्दू अपनी वृद्धावस्था एवं शारीरिक अस्वस्थता के बावजूद बराबर अपनी सक्रियता को साबित करने का प्रयास करता हुआ अपनी हास्यास्पद हरकतों से ऐसा जोकर बन जाता है जिसकी वे हरकतें पाठकों को हंसाती नहीं है बल्कि अपनी मार्मिकता से उनके हृदय को छू लेती है। व्यक्ति के रिटायर्ड जीवन पर परिहार जी ने कई कहानियां लिखी है जो रिटायर्ड व्यक्ति की मानसिकता एवं उससे संबंधित जन तथा परिवेश का मनोविश्लेषणात्मक चित्रण प्रस्तुत करती है। "एक मुलाकात" कहानी रिटायर्ड व्यक्ति के एकाकीपन की कहानी कहती हैं तो "खोया हुआ कस्बा" कहानी रिटायरमेन्ट के बाद अपने कस्बे में ही अपनों के न मिल पाने के दुख को बयां करती है। " गृहप्रवेश" कहानी में जहां रिटायर्ड व्यक्ति अपने पुत्रों सहित सपरिवार एक साथ रहने की अभिलाषा में अपनी जमा पूंजी लगा कर घर बनाने के बाद पुत्रों द्वारा अलग घर बना कर चले जाने से व्यथित हैं वहीं " ऐतबार" कहानी में रिटायर्ड व्यक्ति के पुत्र पुत्रियों द्वारा उसकी देखरेख और परवरिश पूरी तत्परता एवं जिम्मेदारी से करने के आशाप्रद एवं सुखद दृश्य को भी परिहार जी प्रस्तुत करते हुए रिटायर्ड व्यक्ति के जीवन के दोनों पहलुओं को बाखूबी प्रस्तुत करते हैं। सिर्फ रिटायर्ड व्यक्ति के जीवन को ही परिहार जी की कहानियां चित्रित नहीं करती बल्कि गांव में पुत्रों के शहर पलायन करने के बाद घर में फालतू कहे जाने वाले पुत्र के द्वारा पिता की सेवा "एक फालतू आदमी" कहानी में, गांव में झाड़ फूंक, बाबागिरी, निठल्लेपन के दृश्य " दाना पानी" एवं " जोग" कहानी मे तथा विश्वसनीय वृद्ध नौकर की जगह पर युवा नौकर को काम पर रख तथा वृद्ध नौकर को काम से निकाल देने पर सभी पात्रों की मानसिकता को प्रभावशाली ढंग से "बछेडा" कहानी में प्रस्तुत किया गया है।

परिहार जी एक संवेदनशील कहानीकार हैं लेकिन जब उनकी नजर समाज एवं साहित्य के पाखंड की ओर जाती है तो विद्रूपताओं पर तीखा परिहार करने से वे अपने आप को रोक नहीं पाते अतः तदहेतु उनके अंदर से जगता है एक व्यंग्यकार और वे "साहित्य में फौजदारी तत्व", " नये ढब की समीक्षा", " लेखक का संताप", "गुरू जी का अमृत महोत्सव", "लेखक पाठक प्रेमपूर्ण संवाद", "बदनाम अगर होंगे तो क्या", "एक सम्मानपूर्ण सम्मान की ख़त-किताबत" आदि जैसे तीखे व्यंग्य लिखते हैं। उनके व्यंग्य गुदगुदाते, हंसाते नहीं है बल्कि विद्रूपताओं, पाखंडों का पर्दाफाश करते

नजर आते हैं। विगत कुछ वर्षों से वे अब किसी पत्रिका में प्रकाशनार्थ अपनी रचनाये नहीं भेजते लेकिन उनका लेखन कार्य सतत रुप से जारी है तथा उसे वे सोसल मीडिया (फेस बुक) में पोस्ट कर देते है। उनकी अब तक लगभग 150 रचनायें सोसल मीडिया में पोस्ट हो चुकी है।

परिहार जी एक अच्छे कहानीकार एवं व्यंग्यकार ही नहीं एक अच्छे समीक्षक भी है यह रहस्य मुझे तब पता चला जब मैंने अपना प्रकाशित पहला कहानी संग्रह उनके पास समीक्षार्थ भेजा। उनने कहानियों की सिर्फ समीक्षा ही नहीं की बल्कि कहानियों की कमियों की तरफ भी ध्यानाकर्षण कर मेरा मार्गदर्शन किया। अफसोस कि जबलपुर उनके घर मुलाकात के लिए जाने पर उनसे मुलाकात न हो सकी। वे उस समय कोर्ट से लौटे नहीं थे, वे रिटायर्ड होने के बाद ला प्रैक्टिस करने लगे है।

अगर यह कहा जाये कि संस्कारधानी जबलपुर, देश के साहित्य जगत में व्यंग्य के क्षेत्र में आदरणीय स्व. हरिशंकर परसाई तथा सातवें दशक के प्रतिष्ठित प्रगतिशील कहानीकार एवं पहल के संपादक ज्ञानरंजन के नाम से जाना जाता है तो जबलपुर के साहित्य जगत का एक तीसरा कोना भी है जो डॉ. कुंदन सिंह परिहार की सहज सरल लेकिन प्रभावशाली कहानियों तथा विद्रूपताओं पर तीखा परिहार करने वाली व्यंग्य रचनाओं के नाम से भी पहचाना जाता है यह कहना शायद गलत न होगा।

इसी वर्ष के अप्रैल माह की 25 तारिख को आदरणीय डॉ. कुंदन सिंह परिहार जी अपने जीवन के 85 वर्ष की आयु पूर्ण कर रहे हैं। मेरी शुभकामनाएं तथा सभी बंधु बांधव के साथ यही कामना है कि 15 वर्ष बाद हम सब परिहार जी के शतायु (100 वर्ष) पूरे करने पर एक विशाल आयोजन कर उनका स्नेहाशीष प्राप्त करने हेतु पुनः एकत्र होंगे।

श्री राजेन्द्र सिंह गहलौत, कथाकार एवं व्यंग्यकार, "सुभद्रा कुटी" बस स्टैंड के सामने बुढार 484110, जिला शहडोल (म.प्र.) मोबाइल 9329562110

अपनी कहानियों के पात्रों के बारे में परिहार जी कहते हैं....

"मेरे पात्र बड़े प्यारे हैं कमजोर, निश्छल और भोले भाले हैं, ईमानदार और आसानी से ठगे जाने वाले लोग हैं वे बिना कोई हलचल मचाए दुनिया में आते हैं और बेनाम, खामोशी से बिदा हो जाते हैं।"

व्यंग्य - गलती मेरी और भोगना भोगीलाल का

डॉ. कुंदन सिंह परिहार

हुज़ूर! मेरा बचाव यही है कि इस मामले में मैं बेकसूर हूँ। यह इत्ता बड़ा प्लॉट जो आप देख रहे हैं, मेरे वालिद साहब ने खरीदा था। पच्चीस तीस साल पहले ज़मीन चवन्नी फुट के भाव मिलती थी और ज़मीनों के मालिक ग्राहकों से चिरौरी करते फिरते थे कि भाई ले लो, पैसे धीरे-धीरे दे देना। मगर पिछले पंद्रह बीस साल में आबादी ने ऐसे पाँव पसारे और ज़मीन की कीमतों में ऐसे खेल हुए कि अब एक आदमी अपनी कब्र के लायक ज़मीन पा जाए तो ऐसे खुश होता है जैसे जंग जीत लिया हो। हर रोज़ कोई मुझे सूचना देता है, 'भाई जान, आपकी कृपा से सरस्सुती नगर में मकान बनाया है। कभी चरन धूल दीजिए न।'

सब अपना अपना ताजमहल बनाकर मगन हैं, भले ही ताजमहल बनाने में उनकी मुमताज के गहने-ज़ेवर नींव में दफ़न हो गए हों। मैं ताजमहल बनने की सूचना पाकर खुश नहीं होता क्योंकि अभी करोड़ों लोगों का ताजमहल फुटपाथ पर और खूब हवादार बना है और उनकी मुमताज (वो अभी ज़िन्दा है) जब सोती है तो उसके आधे पाँव ताजमहल के बाहर सड़क पर होते हैं।

पिताजी ने पुराने ज़माने के हिसाब से सामने काफी खाली ज़मीन छोड़कर मकान बनवाया। अब सामने ज़मीन छोड़ने का चलन रहा नहीं, इसलिए सामने छूटी लंबी-चौड़ी ज़मीन के मुकाबले हमारा मकान बेतुका और पिद्दी लगता है। दाहिने बायें वाले उस ज़मीन में धीरे से पाँव पसार लेने की फ़िराक में रहते हैं, इसलिए हमने एक लंबी चौड़ी चारदीवारी ज़रूर बनवा दी है।

मैं इतने बड़े प्लॉट को खाली रखकर हमेशा बहुत शर्मिन्दा रहता हूँ क्योंकि मेरे शुभचिन्तक हमेशा पहली नज़र उस ज़मीन पर और दूसरी मेरे चेहरे पर डालते हैं कि मेरा दिमाग ठीक-ठाक है या नहीं। जो पूछ सकते हैं वे पूछते रहते हैं, 'कहो भई, क्या सोचा इस ज़मीन के बारे में?' दरअसल आसपास के घने मकानों के बीच यह ज़मीन ऐसे ही पड़ी है जैसे ठेठ शहरियों की महफिल के बीच में कोई देहाती अपनी पगड़ी सिरहाने रखकर पसर जाए।

एक दिन मैं उस ज़मीन के फालतू पौधे उखाड़ रहा था कि देखा कमीज़-पायजामा धारी एक अधेड़, ठिगने सज्जन मेरे पास खड़े हैं। मैं उन्हें शक्ल से जानता था क्योंकि वे बेहद बदरंग स्कूटर पर कई बार सड़क से आते जाते थे। परिचय का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था।

वे नमस्कार के भाव से हाथ उठाकर बोले, 'जी, मैं भोगीलाल। जमीन मकान का धंधा करता हूँ। यह सारी जमीन आपकी है?'

मैंने कहा, 'हाँ जी अपनी है। आपकी दुआ है। '

वे बोले, 'वो तो ठीक है साब, लेकिन ये इतनी लंबी चौड़ी जमीन खाली क्यों पड़ी है?'

मैंने जवाब दिया, 'बात यह है भोगीलाल जी, कि यह ज़मीन मेरे मरहूम पिताजी ने खरीदी थी। उन्होंने यह मकान बनवाया। अब हमारे पास इतना पैसा नहीं कि सामने मकान बना सकें, और हमारी माताजी ज़मीन को बेचना नहीं चाहतीं। '

भोगीलाल जी कुछ आहत स्वर में बोले, 'क्यों नहीं बेचना चाहतीं जी?'

मैंने कहा, 'यों ही। बस इस ज़मीन से उनका जज़्बाती लगाव है। । कहती हैं कि जब तक वे ज़िन्दा हैं, ज़मीन नहीं बिकना चाहिए। '

भोगीलाल जी मेरी बात सुनकर दुखी भाव से हाथ मलने लगे। बोले, 'यह तो अंधेर है भाई साब। सोने के मोल वाली जमीन मिट्टी बनी पड़ी है और आप जज्बात की बात कर रहे हो। यह जज्बात क्या होता है साब? सुना तो कई बार है। '

मैंने कहा, 'उसे आप नहीं समझेंगे। आप तो इतना ही समझिए कि हमें अभी यह ज़मीन नहीं बेचनी है। '

वे बड़े परेशान से चले गये।

दो-तीन दिन बाद ही वे फिर आ धमके। मुझे घर से बाहर बुलाकर एक तरफ ले गये, फिर बोले, 'तो क्या सोचा जी आपने?'

मैंने पूछा, 'किस बारे में?'

वे आश्चर्य से बोले, 'क्यों! वही जमीन के बारे में। '

मैंने कुछ झुँझलाकर कर कहा, 'मैंने आपसे कहा था न कि माताजी अभी ज़मीन नहीं बेचना चाहतीं।'

सुनकर भोगीलाल जी ऐसे दुखी हुए कि मुझे उनकी हालत पर दया आ गयी। मेरा हाथ पकड़ कर बोले, 'नादानी की बातें मत करो बाउजी। इतनी कीमती जमीन यों फालतू पड़ी देख के मेरा तो दिल डूब डूब जाता है। आप अपनी माताजी को समझओ न बाउजी। यह 'प्राइम लैंड' है, 'प्राइम लैंड'। '

मैंने कहा, 'मालूम है भोगीलाल जी, लेकिन मेरी माताजी इस बारे में कुछ नहीं सुनना चाहतीं और मैं उनकी मर्जी के खिलाफ नहीं जा सकता। '

भोगीलाल जी कुछ क्षण मातमी मुद्रा में शान्त खड़े रहे, फिर बोले, 'देखो साब, मेरी बात का बुरा मत मानना। आप तो बालिग हैं, खुद फैसला कर सकते हैं। आज के जमाने में इस तरह सरवन कुमार बन जाना ठीक नहीं। माफ करना बाउजी, माताजी तो स्वर्गलोक चली जाएँगीं, जमीन यहीं रहेगी और आप यहीं रहोगे। जिनको चले जाना है उनकी बात का इतना ख्याल करना ठीक नहीं। थोड़ा प्रैक्टिकल बनो, बाउजी। मैं यहाँ फ्लैट बनवा दूँगा। एक दो फ्लैट आप ले लेना। मिनटों में लाखों के वारे न्यारे हो जाएँगे। '

मैंने चिढ़कर कहा, 'मैंने कहा न भोगीलाल जी, मुझे ज़मीन नहीं बेचना है। आप बार-बार इस बात को मत उठाइए। '

उन्होंने एक लंबी आह भर कर धीरे से कहा, 'जैसी आपकी मर्जी। ' फिर उस खाली ज़मीन को ऐसी हसरत से देखा जैसे युद्ध में घायल कोई सैनिक अपने आखिरी क्षणों में अपनी बिछुड़ती हुई मातृभूमि को देखता है। इसके बाद वे भारी कदमों से विदा हुए।

इस मुलाकात के बाद मैंने कई बार उन्हें अपनी ज़मीन के सामने खड़े देखा। वे वहाँ खड़े-खड़े ज़मीन के पूरे क्षेत्र की तरफ उँगली घुमाते रहते या उसकी लंबाई और चौड़ाई की तरफ धीरे-धीरे उँगली चला कर फिर उँगलियों पर कुछ गुणा-भाग करने लगते। एक बार उन्हें कैलकुलेटर के बटन दबाकर उसमें झाँकते हुए भी देखा। लेकिन हर बार मुझे देखते ही वे स्कूटर स्टार्ट करके वहाँ से रवाना हो जाते।

एक दिन भोगीलाल जी की युवा कॉपी जैसा एक युवक मेरे घर आया। मुझसे पूछा, 'जी, एम एल त्रिपाठी साब यहीं रहते हैं?'

मैंने कहा, 'जी मेरा ही नाम एम एल त्रिपाठी है। कहिए। '

युवक बोला, 'जी, मैं भोगीलाल जी का बेटा हूँ। उन्हें हार्ट अटैक आया है। अस्पताल में भर्ती हैं। आपको मिलने के लिए बुलाया है। कहा है कि तकलीफ करके थोड़ी देर के लिए जरूर मिल लें। '

मैंने अफसोस ज़ाहिर किया और मिलने का वादा किया, लेकिन यह समझ में नहीं आया कि उन्होंने मुझे क्यों याद किया।

अस्पताल पहुँचा तो वे बिस्तर पर लेटे हुए मिले। कमज़ोर और पीले दिख रहे थे। मैंने सहानुभूति जतायी।

वे धीमी आवाज़ में बोले, 'दरअसल आपकी जमीन ने मुझे मार डाला बाउजी। इसीलिए मैंने आपको तकलीफ दी। बात यह है कि मैंने बहुत दिनों से इतनी कीमती जमीन इतने दिन तक फालतू पड़ी हुई नहीं देखी। आपकी जमीन के पास से निकलते वक्त मेरा ब्लड प्रेशर बढ़ जाता था। अकेले में बैठता था तो आपकी जमीन मेरी खोपड़ी पर सवार हो जाती थी बाउजी। उस दिन आपकी जमीन के बाजू से निकलते वक्त ही मुझे हार्ट की तकलीफ शुरू हुई। '

मैंने अपराधी भाव से कहा, 'मुझे बहुत अफसोस है भोगीलाल जी। मैं क्या करूँ? मैं खुद मजबूर हूँ, नहीं तो आपकी सेहत की खातिर ज़रूर उस ज़मीन का फैसला कर देता। '

भोगीलाल जी बोले, 'हाँ जी, आपका भी क्या कसूर! फिर भी कोशिश करो जी। मुझे क्या लेना देना है, फायदा तो आपको ही होना है। मुझे तो बीच में दो-चार पैसे मिल जाएँगे। '

मैंने उन्हें शान्त करने के लिए कहा, 'मैं फिर कोशिश करूँगा, भोगीलाल जी। आप इत्मीनान से स्वास्थ्य लाभ कीजिए। '

वे कुछ संतोष के भाव से बोले, 'बहुत शुक्रिया जी! आपने बहुत समझदारी की बात की। माताजी से बात करो बाउजी, नहीं तो मुझे आपकी सड़क से निकलना बन्द करना पड़ेगा। आपकी जमीन को देखकर मेरे दिल को धक्का लगता है साब। '

मैं उन्हें आश्वास्त करके चला आया। दुर्भाग्य से माता जी का फैसला नहीं बदला और भोगीलाल जी फिर मेरी सड़क से नहीं गुज़रे। एक बार मैंने उन्हें अपने मकान से कुछ दूर एक आदमी से बातें करते देखा, लेकिन वे मेरे मकान की तरफ पीठ करके खड़े थे। जल्दी ही वे गाड़ी स्टार्ट करके चलते बने, लेकिन उन्होंने मेरे मकान की तरफ नज़र नहीं डाली।

साल भर बाद ही मैंने सुना कि भोगीलाल जी को दूसरा अटैक हुआ और वे अपने लिए पहले से रिज़र्व ऊपर के फ्लैट में रहने के लिए इस दुनिया के ज़मीन-मकान छोड़कर चले गये। लगता है मेरे जैसे किसी दूसरे नासमझ की खाली ज़मीन उनके लिए जानलेवा साबित हुई।

डॉ. कुंदन सिंह परिहार, जबलपुर

नबाब साहब का पड़ोस

श्री जय प्रकाश पाण्डेय

25 अप्रैल 1939 को जन्में कुंदन सिंह परिहार जी ने मध्यप्रदेश और महाराष्ट्र के कालेजों में 40 साल से ज्यादा अध्यापन कार्य किया है। व्यंग्य लेखन और कहानी लेखन में उन्होंने लकीर का फकीर बनना कभी स्वीकार नहीं किया। उन्होंने बहुत सरल भाषा और बनावटहीन सहज शैली में कहानी और व्यंग्य पर अलग अलग तरह के प्रयोग किए हैं। मेरा ख्याल है कि उन्होंने कभी छपने के लिए नहीं लिखा बल्कि उनका लिखा छपता ही रहा। 85 साल की उम्र में भी सीखने की ललक उनमें इतनी तीव्र है कि उन्होंने सोशल मीडिया में भी अपनी खासी पहचान बना के रखी है, वह भी तब जब इनकी उम्र के लेखक सोशल मीडिया को कोसते हैं।

उनकी अधिकांश रचनाओं को पढने के बाद ऐसा है कि परिहार जी अपने आसपास के लोगों की

मनोदशा को पढ़कर उसकी गहरी पड़ताल करते हैं। पात्रों के मन की बात पकड़ने में वे उस्ताद हैं। उनका पात्र क्या सोच रहा है उन्हें पता चल जाता है और उसके अनुसार उनके पात्र अपनी बात कहते हैं। परिहार जी के व्यंग्य पाठकों को झकझोरते हैं मूंधी चोट की मार करते हैं और पाठक के अंदर वैज्ञानिक सोच पैदा करते हैं। उन्होंने अपने आसपास बिखरी विसंगतियों को हमेशा पकड़ कर चोट की और दोगले चरित्र वालों का चरित्र उकेर कर अपने व्यंग्य के जरिए जनता को दिखाया है।

परसाई जी तो व्यंग्य पुरोधा थे ही, उन्होंने व्यंग्य को एक सशक्त विधा बनाया और साहित्य जगत को बता दिया कि व्यंग्य मनोरंजन मात्र के लिए नहीं है व्यंग्य अपना सामाजिक दायित्व निभाना भी बखूबी जानता है। परिहार जी ने अपनी परवाह न करके समाज के प्रति अपने कर्तव्यों का निर्वाह करने का धर्म निभाया है। वे अपनी रचनाओं में जनता के पक्ष में खड़े दिखते हैं। 82 साल में भी वे निरंतर सक्रिय हैं और अभी अभी उनका एक व्यंग्य संग्रह

"नबाब साहब का पड़ोस" प्रकाशित हुआ है, वे 1960 से आज तक लगातार कहानी और व्यंग्य लिखने में अपनी कलम चला रहे हैं। पांच कथा संग्रह एवं तीन व्यंग्य संकलन के प्रकाशित होने

के बाद भी हर माह व्यंग्यम गोष्ठी में वे नया व्यंग्य लिखकर पढ़ते हैं, सिद्धांतवादी हैं, स्वाभिमानी हैं, पर उनकी अपनी अलग तरह की धाक है। चेलावाद और गुटबंदी से वे चिढ़ते हैं यही कारण है कि उनकी कलम एक अलग साफ रास्ता बनाकर चलती रही है। धुन के इतने पक्के कि साहित्यिक कार्यक्रमों में एनसीसी के अफसर की ड्रेस में दिखने में कभी संकोच नहीं किया। साहित्यिक कार्यक्रमों में अपनी वजनदार बात से श्रोताओं को चौंकाते रहे और कभी अपनी सहच सरल भाषा में लिखे व्यंग्यों से चिकोटी काटते रहे। उनकी कहानियों में भी व्यंग्य की एक अलग तरह की धारा बहती मिलती है। प्रतिबध्द विचारधारा के धनी परिहार जी की सोच मनुष्य की बेहतरी के लिए रचनाएं लिखने से है।

हमारी मुलाकात उनसे 40-42 साल पुरानी है और इन वर्षों में हमने कभी किसी प्रकार की दिखावे की प्रवृत्ति नहीं देखी, 42 साल से उनकी कदकाठी और चश्मे से झांकती निगाहों में वे शांत संयत धीर गंभीर दिखे। स्वाभिमानी जरुर हैं पर हर उम्र के लेखक पाठकों के बीच लोकप्रिय हैं।

परसाई जी ने परिहार जी की रचनाओं को पढ़कर लिखा है " परिहार के पास तीखी नजर और प्रगतिशील दृष्टिकोण है, वे राजनीति, समाजसेवा, शिक्षा संस्कृति, प्रशासन आदि के क्षेत्रों की विसंगतियों को कुशलता से पकड़ लेते हैं"

अपनी कहानियों के पात्रों के बारे में परिहार जी कहते हैं

"मेरे पात्र बड़े प्यारे हैं कमजोर, निश्छल और भोले भाले हैं, ईमानदार और आसानी से ठगे जाने वाले लोग हैं वे बिना कोई हलचल मचाए दुनिया में आते हैं और बेनाम, खामोशी से बिदा हो जाते हैं।"

परिहार जी अगली पीढ़ी के लिए चिंतित हैं क्योंकि अगली पीढ़ी के सामने हर तरह के संकट ही संकट प्रगट हो रहे हैं ऐसी स्थिति में वे कहते हैं कि ऐसे विकट माहौल में प्रार्थना की जा सकती है कि हमारा प्रजातन्त्र सच्चा प्रजातंत्र बने और हमारे जनप्रतिनिधि सच्चे बनकर प्रजा की समस्याओं के समाधान में संलग्न हों।

श्री जय प्रकाश पाण्डेय, संपादक ई-अभिव्यक्ति (हिन्दी), जबलपुर

कहानी - जोग

डॉ. कुन्दन सिंह परिहार

रामरती बेहाल है। खाना-पीना, सोना सब हराम है। मजूरी के लिए जाती है तो धड़का लगा रहता है कि कहीं शिब्बू बाबाजी के साथ चला न जाए। दिन-रात मनाती है कि बाबाजी गाँव से टर जाएँ, लेकिन बाबाजी भला क्यों जाने वाले? उनका चमीटा आठ दस दिन से गाँव में ही गड़ा है। बस-अड्डे के पास पुरानी धर्मशाला में टिके हैं। सवेरे से गाँव के लोग सेवा के लिए पहुँचने लगते हैं। कोई दूध लेकर पहुँचता है तो कोई चाय लेकर। कोई सीधा-पिसान लिये चला आता है। किसी चीज़ की कमी नहीं। सवेरे नहा धोकर पूजा करने के बाद बाबाजी शीशा सामने रखकर घंटों शरीर पर चंदन तिलक छापते, चेहरे और शरीर को हर कोण से निहारते रहते हैं।

शाम को खासी भीड़ हो जाती है। इनमें स्त्रियों की संख्या ज़्यादा होती है। चरन छूकर आसिरबाद लेने के लिए चली आती हैं। कई स्त्रियाँ समस्याओं के समाधान के लिए आती हैं--- बहू को संतान का योग है कि नहीं? बेटा परदेस से कब लौटेगा? बेटे के बाप का रोग कब ठीक होगा? समस्याओं का अन्त नहीं है। बाबाजी कहते हैं स्त्रियाँ बड़ी पुन्यात्मा, बड़ी धरम-करम वाली होती हैं। उन्हीं के पुन्न से धरती टिकी हुई है।

शाम को बाबाजी की चिलम खूब चलती है। सेवा करने वाले भी परसाद पा जाते हैं। इसीलिए बाबाजी की सेवा के लिए होड़ लगी रहती है। शाम को भजन-मंडलियाँ ढोलक-झाँझ लेकर बाबाजी के पास डट जाती हैं। देर रात तक भजन चलते हैं। बाबाजी मस्ती में झूमते रहते हैं। कभी मस्ती में खुद भी गाने लगते हैं। साथ साथ चिलम भी खिंचती रहती है।

शिब्बू भी दिन भर बाबाजी की सेवा में लगा रहता है। घर आता है तो बस रोटी खाने के लिए। रोटी खाने के बाद ऐसे भागता है जैसे गुड़ के लिए चींटे भागते हैं। कई बार दोपहर को आता ही नहीं। वहीं परसाद पाकर पड़ा रहता है। बाबाजी ने जाने क्या जादू कर दिया है। रात को बारह एक बजे घर लौटता है, चिलम के नशे में लस्त-पस्त। रामरती कुछ शिकायत करती है तो बाबाजी से सीखे हुए जुमले सुनाना शुरू कर देता है--- 'सिंसार के रिस्ते नाते झूठे हैं माता। यहाँ कोई किसी

का नहीं। सब माया का परभाव है। गुरू से बढ़कर कोई नहीं। अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम। पुन्न की जड़ पत्ताल। '

रामरती का हृदय सुलगता है, कहती है, 'मैं दिन भर मजूरी करके तेरे पेट में अन्न डालती हूँ। तुझे बैठे-बैठे खाते सरम नहीं लगती?'

शिब्बू आँखें झपका कर सन्त की मुद्रा में कहता है, 'अरे माता, जिसने करी सरम, उसके फूटे करम। इस सिंसार में किसी के करने से कुछ नईं होता। '

रामरती गुस्से में कहती है, 'करने से तेरा नर भरता है। नईं करती तो भूखा मर जाता, अकरमी।'

शिब्बू ज्ञानी की नाईं मुस्करा कर कहता है, 'अरे माता, जिसने चोंच दी है वोई दाना देगा। काहे की फिकर। गुरूजी तो कुछ नहीं करते, फिर भी आनन्द में रहते हैं। '

रामरती परेशान है क्योंकि गाँव में खबर गर्म है कि शिब्बू जोग लेगा, बाबाजी का चेला बन कर उन्हीं के साथ चला जाएगा। रामरती ने उसे बड़ी मुश्किल से, बड़ी उम्मीदों से पाला है। बाप दस साल पहले दारू पी पी कर मर गया था। शिब्बू से बड़ी एक बेटी है जिसकी शादी के लिए करजा काढ़ना पड़ा। अब रामरती खेतों में मजूरी करके घर चलाती है। शिब्बू का कोई भरोसा नहीं। एक दिन काम करता तो चार दिन आराम। बना- बनाया भोजन मिल जाता है, इसलिए बेफिक्र रहता है।

शिब्बू का बाप गाँव के बड़े लोगों की संगत में पड़ गया था। उसे इस बात का बड़ा गर्व था कि उसका उठना-बैठना हैसियत वालों में था। दरअसल वह भाँड़गीरी में उस्ताद था। लोगों की नकल और प्रहसन में वह माहिर था। इसीलिए वह बड़े लोगों के मनोरंजन का साधन बना रहता था। उसे चाटने-पोंछने के लिए कुछ न कुछ मिलता रहता था जिसमें वह बड़ा खुश रहता था। घर आता तो तर्जनी और अँगूठे से गोला बनाकर रामरती से कहता, 'आज अंगरेजी पीने को मिली। मजा आ गया। '

धीरे-धीरे उसे लत लग गयी थी। दारू के लिए घर का सामान बेच देता। रामरती आँसू बहाती, लेकिन घर में सुनने वाला कोई नहीं था। फिर वह बीमार रहने लगा। खाना पीना कुछ नहीं पचता था। गाँव के अस्पताल के डॉक्टर को दिखाया तो उसने बताया, 'पी पी पर इसका जिगर खराब हो गया है। शहर जाकर दिखाओ। यहाँ ठीक नहीं होगा। '

रामरती कहाँ दिखाये और कैसे दिखाये? आदमी उसकी आँखों के सामने घुलता घुलता चला गया।

शिब्बू के लिए रामरती ने बहुत कोशिश की कि वह पढ़-लिख जाए। उसने उसे गाँव के स्कूल में भर्ती भी करा दिया था, लेकिन उससे आगे उसके हाथ में कुछ नहीं था। वह खुद पढ़ी-लिखी थी नहीं, न उसके पास इतनी फुरसत थी कि शिब्बू की चौकीदारी करे। शिब्बू घर से बस्ता लेकर निकल जाता और फिर स्कूल बन्द होने के समय तक कुछ निठल्ले लड़कों के साथ तालाब के किनारे 'गिप्पी' खेलता रहता या आम तोड़ता रहता। उसका मन पढ़ने में नहीं लगता था।

रामरती को कुछ पता नहीं था। वह दाल-रोटी के जुगाड़ में ही उलझी रहती थी। एक दिन संयोग से उसने रास्ते में स्कूल के मास्टर जी को रोककर शिब्बू की प्रगति के बारे में पूछ लिया। जवाब मिला, 'शिब्बू का तो कई महीने पहले गैरहाजिरी के कारण स्कूल से नाम कट गया है। अब वह स्कूल का छात्र नहीं है। '

सुनकर रामरती का दिल टूट गया। लड़के के भविष्य के उसके सारे सपने ध्वस्त हो गये। घर आकर उसने एक साँटी लेकर शिब्बू की खूब मरम्मत की, लेकिन उस पर कोई असर नहीं हुआ। उसे जितना पीटा, उतना ही माँ का हृदय भी आहत हुआ।

शिब्बू अब गाँव में टुकड़खोरी में लग गया था। गाँव में लोग उसे छोटा-मोटा काम करने के लिए बुला लेते और बदले में उसे थोड़ा-बहुत पैसा या कुछ खाने को दे देते।

गाँव की स्त्रियाँ रामरती को सलाह देतीं, 'लड़के का ब्याह कर दो। बहू आ जाएगी तो सुधर जाएगा। जिम्मेदार हो जाएगा। '

रामरती भुन कर जवाब देती, 'नहीं सुधरेगा तो दो दो का पेट कौन भरेगा? फिर कुछ दिन बाद तीसरा भी आ जाएगा। मैं मजूरी- धतूरी करूँगी या बहू की चौकीदारी करूँगी? तब तुम कोई मदद करोगी क्या?'

सुझाव देने वाली भकुर कर आगे बढ़ जाती।

अब बाबाजी के आने से रामरती की जान और साँसत में पड़ गयी है। अगर सचमुच शिब्बू उनके साथ चला गया तो क्या होगा? उसके मन में कहीं न कहीं उम्मीद है कि वह सुधर जाएगा। बाबाजी ले गये तो उसकी उम्मीद बुझ जाएगी। फिर किसके लिए जीना और किसके लिए छाती मारना? सारे समय भगवान से मिन्नत करती रहती कि शिब्बू की मत ठीक बनी रहे।

एक दिन शिब्बू ने वही कह दिया जिसका उसे डर था। बोला, 'बाई, मैंने बाबाजी से मंतर ले लिया है। उनका चेला बन गया हूँ। उन्हीं के साथ देस देस घूमूँगा। बड़ा आनन्द आएगा। गोबरधन भी जाएगा। वह भी चेला बन गया है। '

रामरती की जान सूख गयी। आँख से आँसू टपकने लगे। सारा आत्माभिमान गल गया। चिरौरी के स्वर में बोली, 'बेटा, तू चला जाएगा तो मैं किसके सहारे जिऊँगी? अपनी महतारी को बुढ़ापे में बेसहारा छोड़ जाएगा? तू कहीं मत जा बेटा। मैं तुझे बैठे-बैठे खिलाऊँगी। '

शिब्बू ने सीखे हुए वाक्यों में जवाब दिया, 'माता, कई जीवों के बच्चे दो चार दिन में ही माँ-बाप को छोड़ देते हैं। उनकी माता दुखी नहीं होती? सिंसार से मोह ममता नहीं रखना चाहिए। '

उधर गाँव में बाबाजी के साथ साथ शिब्बू की भी जयजयकार हो रही थी। लोग उसे देखकर हाथ जोड़ते। स्त्रियाँ उसके सामने पड़ जातीं तो बैठ कर आँचल का छोर धरती से छुआ कर माथे पर लगातीं। शिब्बू के पाँव ज़मीन पर नहीं थे। गर्व से उसकी आँखें मुँदी रहती थीं। लोग रामरती से कहते, 'बड़ी भागवाली हो रामरती। लड़का खूब पुन्न कमाएगा। सब पिछले जनम के सतकरमों का फल है। '

रामरती के ससुर जीवित हैं। दूसरे बेटे के साथ रहते हैं। पढ़े-लिखे न होने के बावजूद सयाने, समझदार हैं। रामरती अपना दुखड़ा लेकर उनके पास गयी। वे बोले, 'बेटा, क्या करें? कुएँ में भाँग पड़ी है। सब जैजैकार करने में लगे हैं। तुम्हारी बिथा समझने वाला कौन है? मैंने शिब्बू को समझाया था, लेकिन वह पगला है। समझता नहीं। जैजैकार में फूला फिरता है। '

अब रामरती को लगता था बाबाजी कभी भी चेलों को लेकर खिसक जाएँगे। उसे न नींद आती थी, न मजूरी में मन लगता था। सारे वक्त आँखें शिब्बू को ही तलाशती रहती थीं।

गाँव में पुलिस चौकी थी। दरोगा जी सारे वक्त दुखी बैठे रहते थे क्योंकि गाँव के ज़्यादातर लोग भुक्खड़ थे। आमदनी की संभावना न के बराबर थी। दरोगा जी की नज़र में यह गाँव मनहूस था। एक दोपहर रामरती उनके पास जा पहुँची। बोली, 'दरोगा जी, धरमसाला में जो बाबाजी आये हैं वे मेरे बेटे को चेला बना कर ले जा रहे हैं। मैं बेसहारा हो जाऊँगी। आप उन्हें रोको, नहीं तो मैं किसी कुएँ में डूब मरूँगी। '

दरोगा जी ने उसके चेहरे को टटोला कि कितना सच बोल रही है, फिर बोले, 'बाई, मैं क्या कर सकता हूँ? तुम्हारा बेटा बालिग है तो वह अपनी मर्जी से कहीं भी जा सकता है। '

रामरती बोली, 'वह बालग नहीं है। '

दरोगा जी टालने के लिए बोले, 'कुछ प्रमाण-सबूत लाओ तो देखेंगे। '

रामरती ने जवाब दिया, 'ठीक है। मैं इस्कूल से लिखवा कर लाऊँगी। '

रामरती के जाने के बाद दरोगा जी के दिमाग में कीड़ा रेंगा। थोड़ी देर में मोटरसाइकिल लेकर धर्मशाला पहुँच गये। बाबाजी आराम कर रहे थे। दरोगा जी को देख कर उठ कर बैठ गये। दरोगा जी नमस्कार करके बोले, 'कैसे हैं महाराज?'

बाबा जी दोनों हाथ उठाकर बोले, 'आनन्द है। खूब आनन्द है। बड़ा प्रेमी गाँव है। '

दरोगा जी ने इधर-उधर नज़र घुमायी, फिर बोले, 'गाँव से कुछ चेले बनाये क्या?'

बाबा जी का मुँह उतर गया, बोले, 'अरे नहीं। हम इतनी आसानी से चेला-वेला नहीं बनाते। मन मिले का मेला, चित्त मिले का चेला। बाबा सबसे भला अकेला। '

दरोगा जी बोले, 'किसी नाबालिग लड़के को चेला मत बनाइएगा। माँ-बाप रिपोर्ट कर देंगे तो आप मुश्किल में पड़ जाओगे। '

बाबाजी घबरा कर बोले, 'अरे नहीं महाराज! अपने राम इस चक्कर से दूर रहते हैं। '

दरोगा जी मोटरसाइकिल पर सवार होकर चलते बने, लेकिन बाबाजी के कान खड़े हो गये। चेलों से पूछताछ की तो पता चला रामरती दरोगा जी के पास गयी थी।

शाम को बाबाजी शिब्बू से बोले, 'बच्चा, अभी तुमको हमारे साथ नहीं जाना है। हमने जो मंतर दिया है उसे साधना है, नहीं तो तुम्हारी साधना कच्ची रह जाएगी। साल भर बाद हम फिर आएँगे, तब तुम्हें अपने साथ ले जाएँगे। '

उसी रात बाबाजी गाँव को सोता और रोता छोड़ कर सारा सीधा-पिसान लेकर अंतर्ध्यान हो गये। रामरती को पता चला तो उसने राहत की साँस ली।

सवेरे शिब्बू ने अपना सारा गुस्सा माँ पर उतारा। दाँत पीसकर बोला, 'तुम्हीं ने सब गड़बड़ किया। न तुम दरोगा के पास जातीं, न गुरूजी गाँव छोड़कर जाते। लेकिन इससे क्या होता है? क्या गाँव में और बाबा नहीं आएँगे? मैं किसी के भी साथ भाग जाऊँगा।'

रामरती शान्त स्वर में बोली, 'अभी तो मुसीबत टर गयी, भैया। जब फिर आएगी तो देखेंगे। '

डॉ. कुन्दन सिंह परिहार, जबलपुर

साहित्य के कुंदन : कुंदन सिंह परिहार

श्री अभिमन्यु जैन

स्वतंत्रता के बाद परसाई जी ने पाठकों को व्यंग्य की ताकत से परिचित कराया लेखन में अड़चन होने पर शासकीय नौकरी छोड़ी और आर्थिक स्थिति कमजोर होने के बावजूद जिंदगी भर मसिजीवी बनकर रहे. इस स्थिति के बावजूद उन्होंने बड़ों बड़ों को आइना दिखाया और कहीं समझौता नहीं किया . उन्होंने स्पष्ट किया कि व्यंग्य एक गंभीर विधा है, मनोरंजन कि चीज नहीं. हिंदी में व्यंग्य की प्राचीन परम्परा है. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का नाटक " अंधेर नगरी " तत्कालीन शासन पर मारक व्यंग्य है. बालमुकुंद गुप्त, बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायन मिश्र अपने व्यंगात्मक लेखों से प्रसिद्ध हुए. कुछ ऐसा ही लेखन कुंदन सिंह परिहार जी का है. उनका लेखन गहरी चोट करते हुए सोचने पर विवश करता है. कालातीत होने वाले, सम सामयिक विषयों से बचते हुए सर्व कालिक विषयों पर केंद्रित उनके व्यंग्य, व्यंग्य संसार की धरोहर हैं. मैंने, व्यंग्य यात्रा के july- सितम्बर 2019 अंक में " एक रोमांटिक की त्रासदी " उनके व्यंग्य संग्रह पर चर्चा की थी. आप भी देखें, संग्रह के कुछ रंग. साहब की किरकिट - रचना में साहब को किरकिट के खेल में जिताने की राजनीती ऑफिस स्टॉफ द्वारा की जाति है, जिसे एक नया कर्मचारी समझ नहीं पाता और कायदे क़ानून से क्रिकेट खेलकर साहब को आउट कर देता है. उसकी यह मूर्खता बड़े बाबू और स्टाफ की नाराजी का कारण बनती है. साहब को खुश करने में कायदे क़ानून की क्या जरूरत?, रचना - उसूल वाला आदमी, जिसके नौरंगी बाबू रिश्वत लेने के मामले में इतने उसूल वाले हैं की सगे बाप और भाई को भी नहीं छोड़ते, ऊपर से तुर्रा यह की ऐसा करते हुए उनकी आत्मा दुखती है. - रज्जन बाबू का केस, उन सज्जनों पर व्यंग्य है जो सूट, टाई पहनकर अपने आपको आम आदमी से हटकर कुछ खास होने का मुग़लता पाल लेते हैं. लेकिन पुलिस के सिपाही से मिली बेइज़्ज़ती से उन्हें समझ में आ जाता है की वे इज़्ज़तदार आदमी नहीं, बल्कि बिना किसी विशेषण के सिर्फ "आदमी " हैं. " एक श्रोता संहिता " है, जिसके अनुसार, जो वक्ता एक जगह परिवार नियोजन पर भाषण देता है, वही दूसरी जगह आठवीं संतान के जन्म पर बधाई भी दे आता है.

25 अप्रैल 1939 को मध्य प्रदेश के छतरपुर जिले के ग्राम अलीपुरा में जन्मे कुंदन सिंह जी, एम ए (अंग्रेजी साहित्य) एम ए (अर्थ शास्त्र), पी एच. डी., एल एल. बी शिक्षित हैं. आपके पांच कथा संग्रह - तीसरा बेटा, हासिल, वह दुनिया, शहर में आदमी, काँटा के साथ ही तीन व्यंग्य संग्रह अंतरात्मा का उपद्रव, एक रोमांटिक की त्रासदी, नवाब साहब का पड़ोस, प्रकाशित एवं पाठकों के बीच चर्चित हैं. रचना कर्म, 1960 के पश्चात निरंतर कहानी और व्यंग्य लेखन. देश की सभी नामचीन पत्रिकाओं में कहानी एवं व्यंग्य प्रमुखता से प्रकाशित हैं. गोविंदराम सेक्सरिया अर्थ वाणिज्य महाविद्यालय के प्राचार्य पद से सेवा निवृत हो साहित्य सृजन में रत हैं.

दिखने में साधारण किन्तु लेखन असाधारण. मैं, उनका छात्र रहा हूं, उन्हें तड़क - भड़क से परहेज हैं, सम्मान - अभिनन्दन के नाम से उन्हें बुखार आता हैं.85 वर्ष के हैं किन्तु उत्साह युवकों सा है, शालीन व्यवहार के धनी, शालीनता से परिपूर्ण. व्यंग्यम संस्था से उनका जुड़ाव, है. इस कारण हमें उनके साथ बैठने, सुनने का अवसर मिल जाता है.. कथा संग्रह " वह दुनिया " के लिए मध्य प्रदेश हिंदी साहित्य सम्मेलन के 1994 के वागीशवरी पुरुस्कार और 2004 में कहानी नई सुबह के लिए राजस्थान पत्रिका के सृजनात्मकता के लिए परिहार जी सम्मानित हुए. सहज़, सरल, सहृदय परिहार जी हिंदी जगत के लिए अपरिहार्य हैं. वे अपने वक्तव्य में कहते हैं " अपनी तो जैसे तैसे कट गई, फ़िक्र अगली पीढ़ीयों की है ". वे मित्रता को कितना मान देते हैं की उन्होंने अपने व्यंग्य संग्रह " नवाब साहब का पड़ोस " जबलपुर के अपने साथी व्यंग्यकारों को, जिन्होंने हमेशा स्नेह दिया और लिखने की इच्छा को मरने न दिया " एक बात और इस पुस्तक में "लेखक के दो शब्द के अलावा अन्य कोई भूमिका, प्रस्तावना, शुभकामना आदि कुछ नहीं है. उम्र के 85 पार कर चुके हैं, कहते हैं छपने और प्रसिद्धि पाने की ललक से काफ़ी पहले मुक्त हो चुका हूँ, लेकिन पढ़ने और लिखने का क्रम जारी हैं. परिहार जी भविष्य में घटते जल संकट, हवा पानी के जहरीले होने का संकट, रोजगार का संकट, चौड़ी होती आर्थिक असमानता का संकट, साम्प्रदायिक भेदभाव का संकट शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं के महंगी और स्टारहीन होने का संकट यानि संकट ही संकट.

हरि शंकर परसाई जी ने परिहार जी के लेखन को रेखांकित करते हुए लिखा :- परिहार के पास तीखी नजर और प्रगतिशील दृष्टिकोण है . वे राजनीति, समाज सेवा, शिक्षा, संस्कृति, प्रशासन आदि के छेत्रों की विसंगतियों को कुशलता से पकड़ लेते हैं. समाज में जो पाखंड, मिथ्याचार, ढोंग, स्वार्थपरता, भृष्टाचार, दोमुहाँ पन, झूंठ आदि चलते रहते हैं, वे परिहार की दृस्टि से बचे नहीं रह

सके, वे इनके प्रतिनिधि चरित्रो को भी खोज लेते हैं. बहुत सरल भाषा और बनावट हीन सहज़शैली में लिखी गई ये कथाएँ केवल मनोरंजन नहीं करती, बल्कि जीवन की तीखी आलोचना प्रस्तुत करती हैं. यह एक दर्पण है, जिसमें हमारे जीवन का विकृत चेहरा दिखता है.

परसाई जी के ही शब्दों में कहें तो व्यंग्य अन्याय के विरुद्ध लेखक का हथियार बन जाता है. और इस हथियार का प्रयोग कुंदन सिंह परिहार जो साहित्यिक अवदान /सृजन में अपने नाम के आगे डॉ. का प्रयोग नहीं करते, के द्वारा बखूबी किया गया है. इस महीने 25 अप्रैल उनका जन्मदिन है, सभी मित्रों की ओर से उन्हें जी भर के बधाई. वे स्वस्थ, सुखी, सानंद रहें शतायु हों, उनका आशीर्वाद मार्ग दर्शन हम सबको मिलता रहे।

श्री अभिमन्यु जैन, राईट टाउन जबलपुर मो. 9425885294

ख्यातिलब्ध कथाकार ज्ञानरंजन की नजर में ...

कुंदन सिंह परिहार ने अपनी कहानियाँ व्यंग्य से प्रारंभ की हैं जो नयी पीढ़ी के लिए स्वाभाविक हैं। उनकी कहानियों में मध्यवर्ग की नोंक साफ़ हैं, लेकिन वे सर्वज्ञानी की तरह नहीं, किंचित सरोकार के साथ कहानियाँ लिख रहे हैं। यह सरोकर अब फैल रहा हैं।मोह से व्यंग्य तक पहुँचने के बाद परिहार कहानी की उस हद में संतरण कर रहे हैं जहाँ झुलसे हुए जीवन की गंदली आत्माएं उनकी प्रतीक्षा कर रही हैं।यहीं से कहानी की असली डोर शुरू होती हैं। परिहार की भाषा शुद्ध हैं और उन्होंने इस मामले में जो सफाई रखी हैं वह अधिकांश नये कहानीकारों में उपेक्षित हैं। भाषा के बारे में दूसरी बात हैं उनका मितव्ययी होना। आधिक जानने की उतावली उनमें नहीं हैं। इधर हाल की कहानियों में उन्होंने छलांग ली हैं और उनकी रचना प्रक्रिया भीतरी तहों को खोलने लगी हैं।

व्यंग्य विमर्श - आज सामाजिक संदर्भ में व्यंग्य की भूमिका

डॉ. कुंदन सिंह परिहार

व्यंग्यकार समाज में सुधार के लिए ही लिखता है। उसमें समाज के चेहरे की विकृतियों को देखने की विशेष दृष्टि होती है। वह समाज के सामने दर्पण रखता है कि समाज उसमें झाँके और अपने चेहरे के ऐंड़े-बेंड़ेपन को पहचाने और सुधारे। इसीलिए परसाई जी ने अपने को 'बेचैन मन का संवेदनशील आदमी' कहा। परसाई जी ने लिखा, 'अनगिनत लोगों को सुखी देखता हूँ और अचरज करता हूँ कि ये सुखी कैसे हैं। न उनके मन में सवाल उठते हैं, न शंका उठती है। 'व्यंग्यकार का लेखन उतना ही सार्थक होता है जितना वह अपने से बाहर निकलकर व्यापक समाज से जुड़ता है। छोटे-मोटे महत्वहीन विषयों पर अपनी प्रतिभा नष्ट करने से कुछ हासिल नहीं होता।

भारत जैसे समाज में जहाँ रूढ़ियाँ, अंधविश्वास, अशिक्षा, वैज्ञानिक चेतना का अभाव, निर्बलों का शोषण, पाखंड और स्वार्थपरता व्यापक हैं, वहाँ लेखक की चुनौतियाँ बड़ी हो जाती हैं। श्री जयप्रकाश पांडेय से एक साक्षात्कार में परसाई जी ने कहा, 'मैं इसलिए दुखी हूँ कि देखो मेरे समाज का क्या हाल हो रहा है, मेरे लोगों का क्या हाल है, मनुष्य का क्या हाल होता जा रहा है, ये सब दुख मेरे भीतर है, करुणा मेरे भीतर है। ' स्व. प्रभाकर चौबे से एक साक्षात्कार में उन्होंने कहा, 'मैं यह नहीं चाहता कि मनुष्य को बेहतर मनुष्य होना चाहिए तो काहे को लिखता?मेरा कंसर्न है, डीप कंसर्न है मनुष्य से। तभी करुणा व्याप्त होती है। तभी लिखता हूँ। 'एक और महत्वपूर्ण बात उन्होंने इसी साक्षात्कार में कही----'कोई अनुभव ऐसा होता है जिस पर आप एक मिनट हँस सकते हैं, उसका सामाजिक महत्व नहीं होता। इस प्रकार जो काम के अनुभव हैं वे ही आगे चलकर रचना का रूप लेते हैं। '

ज़ाहिर है कि व्यंग्य लेखन गंभीर सामाजिक कर्म है, उसे मनोरंजन की चीज़ नहीं समझा जाना चाहिए। सार्थक व्यंग्य लेखन तभी होता है जब लेखक को लगे कि 'सारे जहाँ का दर्द हमारे जिगर में है। '

(डॉ कुंदन सिंह परिहार की टिप्पणी)

समीक्षा - व्यापक फलक के व्यंग्य

श्री अभिमन्यु जैन

'एक रोमांटिक की त्रासदी' श्री कुंदन सिंह परिहार की 50 व्यंग्य रचनाओं का संकलन हैं। लेखक का यह दूसरा व्यंग्य - संकलन हैं, यद्यपि इस बीच उनके पाँच कथा - संकलन प्रकाशित हो चुके हैं। यह संकलन हिंदी के मुर्धन्य व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई को इन शब्दों के साथ समर्पित हैं - 'परसाई जी की स्मृति को, जिन्होंने पढ़ाया तो बहुतों को, लेकिन अंगूठा किसी से नहीं मांगा।' ये मर्मस्पर्शी पंक्तियाँ बार बार आकर्षित करती हैं।

व्यंग्य 'एक रोमांटिक की त्रासदी' से अभिप्रेरित हैं। दिन में जो प्रकृति लुभाती हैं, आकर्षक लगती हैं, वही रात्रि में, यदि हम अभ्यस्त नहीं हैं तो, डरावनी लगने लगती हैं। शहरी व्यक्ति को एक रात भी गाँव के खेत - खलिहान में काटनी पड़े तो उसकी नींद काफूर हो जाती हैं। मन भयग्रस्त हो जाता हैं, जबकि एक ग्रामीण उसी वातावरण में गहरी नींद सोता हैं। रचना में ग्रामीण और शहरी परिवेश का फर्क दर्शाया गया हैं। 'सुदामा के तंदुल' उन नेताओं पर कटाक्ष हैं जिनके लिए चुनाव आते ही गरीब की झोपडी मंदिर बन जाती हैं। आज दलित, आदिवासी के घर भोजन करना राजनीति का जरुरी हिस्सा बन गया हैं। 'साहब की किरकिट' रचना में साहब को क्रिकेट के खेल में जिताने की राजनीति ऑफिस स्टाफ द्वारा की जाती हैं, जिसे एक नया कर्मचारी समझ नहीं पाटा और कायदे कानून से क्रिकेट खेलकर साहब को आउट कर देता हैं। उसकी यह मुर्खता बड़े बाबू और अन्य स्टाफ की नाराजी का कारण बनती हैं साहब को खुश करने के मामले में कायदे - कानून की क्या जरुरत ?

एक और महत्वपूर्ण रचना उसूल वाला आदमी है जिसके नौरंगी बाबू रिश्वत लेने के मामले में इतने उसूल वाले हैं कि सगे बाप और भाई को भी नहीं छोड़ते ऊपर से तुर्रा यह है कि ऐसा करते हुए उनकी आत्मा दुखती है

राजन बाबू का केस उन सज्जनों पर व्यंग है जो सूट टाइप पहनकर अपने आप को आम आदमी से हटकर कुछ खास होने का मुगालता पाल लेते हैं लेकिन पुलिस के सिपाही से मिली बेइज्जती

से उन्हें समझ में आ जाता है कि वह इज्जतदार आदमी नहीं बल्कि बिना किसी विशेषण के सिर्फ आदमी है गुरु महिमा प्रसंग व्यंग्य अवसरवादिता चाटुकारिता स्वार्थपरता से ग्रस्त गिरगिट जैसे रंग बदलने वाले उच्च शिक्षा संस्थानों के अध्यापकों को आचार्य के दोहरे चरित्र को दर्शाता है एक श्रोता संहिता है जिसके अनुसार जो वक्त एक जगह परिवार नियोजन पर भाषण देता है वहीं दूसरी जगह आठवीं संतान के जन्म पर बधाई भी देता आता है ऐसे वक्ताओं से बचने के लिए इस व्यंग में श्रोता संहिता बनाई गई है।

बुद्ध और केशव उन पर तंज है जो उम्र निकल जाने पर भी मानने को तैयार नहीं होते रंगा पुताई में लगे रहते हैं जैसे की खस्ता इमारत नहीं हो जाएगी बुढ़ापे में जवानी की फोटो छाप रहे हैं बुढ़ापे को स्वीकारना शालीनता है आप जैसे हैं वैसा दिखने में क्या हर्ज है मोहल्ले का सुरमा है जिसके बल्लू अपने को शेर और बाकी सब को ढेर समझते हैं लेकिन जब शेर को सवा शेर मिल जाता है तब उनकी जाकर ऊ हो जाती और पांव पकड़े शुरू हो जाती है।

विप का जुकाम एक दिलचस्प रचना है जिसमें स्वारथ लागि करहिं ही सब प्रीति के दर्शन होते हैं चेन्नई सचमुच इलाज की जरूरत है वह इलाज क्या भाव में दम तोड़ रहे हैं और वीआईपी कोच्चि खाते ही ओझा तांत्रिक आयुर्वेदाचार्य यूनानी हकीम और बड़े - बड़े चिकित्सक उपस्थित हो जाते हैं चमचे चिंता व्यक्त करते हैं और माननीय परेशान होकर उन्हें बाहर का रास्ता दिखाते हैं।

एक अतिशिष्ट आदमी संग्रह की एक महत्वपूर्ण रचना है हर धनी आदमी की भूख धन के अलावा प्रतिष्ठा और लोकप्रियता की होती है साधन संपन्न व्यक्ति अनेक संस्थाओं को आर्थिक व सहयोग प्रदान कर महिमा मंडित होते रहते हैं इससे दोनों की स्वार्थ सिद्धि होती रहती है। संपादक के नाम चंद खूतूत को तो उन लेखक पर तंज है जो रचना में दम न होने के बावजूद उसे छुपाने के लिए संपादकों की नींद हराम किए रहते हैं।

एक नायाब भाषण नेताओं के भाषण रोग को लक्ष्य करती है भाषण में विषय विश्व शांति है किंतु वक्ता महोदय पारिवारिक और गली मोहल्ले के मुद्दों पर केंद्रित कर विश्व शांति का राग अलाप रहे हैं उनके विचार से दो में से एक आदमी गम खा जाए तो शांति बनी रहती है घर में शांति होने से विश्व में शांति होगी इस व्यंग में आंचलिक भाषा का अच्छा प्रयोग किया गया है।

संग्रह की रचनाओं में बड़ी विविधता है विचारों भावों और कथन में कहीं भी पुनरावृत्ति नहीं है हर विषय को विस्तार से सिलसिलेवार प्रस्तुत किया गया है सामाजिक विसंगतियों और वेदरूपताओं पर पर्याप्त फोकस है रचनाओं में किसी विचारधारा या दल विशेष की ओर झुकाव दृष्टिगोचर नहीं होता भाषा की समृदधता प्रभावित करती है स्थानीय भाषा और बोली का सटीक प्रयोग है रचनाओं का फलक व्यापक है और इनमें समाज और मानव मन के दबे छुपे कोनों तक पहुंचने का प्रयास स्पष्ट है।

संग्रह में छोटे - छोटे प्रसंग को लेकर व्यंग्य का ताना - बाना बन गया है सामान्य जन जीवन में व्याप्त वैश्य में विरूपता और विसंगतियों को उजागर करने के लिए व्यंग सशक्त माध्यम है और इस माध्यम का उपयोग लेखक ने बखूबी किया है परसाई जी के शब्दों में कहें तो व्यंग अन्याय के विरुद्ध लेखक का हथियार बन जाता है व्यंग्य के विषय में मदन कातस्यायन का कथन है जिस देश में दारिद्र्य की दवा पंचवर्षीय योजना हो वहां के साहित्य का व्यंगात्मक होना अनिवार्य विवशता है।

श्री अभिमन्यु जैन, राईट टाउन जबलपुर मो. 9425885294

(प्रलेस के कार्यक्रम में स्व. प्रो.महेश दत्त मिश्र और स्व. मायाराम सुरजन के साथ।)

व्यंग्य और कहानी की अविरल धारा बहाते डॉ. कुंदन सिंह परिहार

श्री रमाकांत ताम्रकार

स्वातंत्र्य समर के पश्चात देश अपनी राह पर चलाने के लिए गति शील हो रहा था. एसे समय कहानी सम्राट प्रेमचंद और समकालीन कहानीकारों को शिद्दत से पढ़ा और गुना जाने लगा. तभी व्यंग्य के पितामह आदरणीय हरिशंकर परसाई के व्यंग्य भी लोगों को आकर्षित करने लगे.

प्रोफेसर श्री परिहार जी भी कहानी और व्यंग्य का अध्ययन करने लगे. उनके भी मन में लिखने का ज़ज्बा था सो उनकी कलम से कहानी औऱ व्यंग्य की प्रांजल धारा बह उठी. देखते-देखते देश की प्रमुख पत्र पत्रिकाएं भी उनके आलेख और कहानी , व्यंग्य को प्रमुखता से प्रकाशित कर अपने को गौरवांवित समझने लगी थी. मेरे अनुमान से आदरणीय परिहार जी पिछले सात दशकों से साहित्य के यायावर यात्री हैं तथा उन्होंने साहित्य के समस्त उतार चढाव को देखा हैं.

उन्हें अनेकानेक पुरुस्कारों से भी सम्मानित किया जा चुका है. आज उनकी गिनती हिंदुस्तान के पोरों पर गिने जाने वाले साहित्यकारों में होती हैं.

जब जब कहानी मंच जबलपुर के कार्यक्रम होते है उनमे आपकी गुरुतर भूमिका रही है. 1997 में कहानी मंच की गोष्ठियों का प्रारम्भ उनकी कहानी पितृहंता से हुआ. आप का कहानियों के प्रति जो विजन होता वो हम सब कथाकारों को मार्गदर्शन और प्रेरणा देता. जिससे प्रेरणा लेकर जबलपुर नगर के अनेक युवाओं ने कहानी लिखना सीखा.

वर्ष 1981 में मेरा एक व्यंग्य नव भारत रविवारीय अंक "आइये व्यंग्यकार से मिलिए " में प्रकाशित हुआ था. तब तक में व्यंग्य का ककहरा नहीं जानता था. उस व्यंग्य के बाद श्री परिहार जी से मेरी मुलाकात हुई उन्होंने प्रोत्साहित किया जिससे मेरी रुचि व्यंग्य में जागी.

मेरे जैसे न जाने कितने लेखक हुए है जो श्री परिहार जी के आशीर्वाद और प्रोत्साहन के फलस्वरुप कहानी और व्यंग्य के क्षेत्र में आए. आप कहानियों और व्यंग्य के स्कूल है.

आपके 85 वे जन्मदिन के अवसर पर आपको बहुत-बहुत बधाईयाँ.

श्री रमाकांत ताम्रकार जबलपुर 9926660150

मेरी दृष्टि में - परिहार का साहित्यिक संसार

श्री जगत सिंह बिष्ट

वरिष्ठ व्यंग्यकार, जीवन मेनेजमेंट गुरु, भारतीय स्टेट बैंक से सेवानिवृत्त सहायक महाप्रबंधक श्री जगत सिंह बिष्ट इन दिनों इंदौर में रहते हैं, लम्बे समय जबलपुर में पोस्टिंग के दौरान परिहार जी के करीबी रहे, आपके पांच व्यंग्य संग्रह प्रकाशित हुए हैं, बाद में इन्होंने जीवन मेनेजमेंट गुरु के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा पाई है। परिहार जी की रचनाएं पढ़कर अपनी छोटी छोटी टिप्पणियां समय-समय पर देते रहें हैं, उदाहरण स्वरूप कुछ टिप्पणी आपके अवलोकनार्थ.....

- परिहार जी के व्यंग्य लेखों में आसपास के जाने पहचाने विषय और पात्र बड़ी आसानी से मिल जाते हैं। वे एक कुशल सर्जन की तरह चीरफाड़ करने में माहिर हैं, भाषा और शब्द आनंदित कर देते हैं। आपकी अंतर्दृष्टि और अभिव्यक्ति का जबाब नहीं।

- इस बीच, कुछ और कहानियां पढ़ीं। अत्यंत मार्मिक, संवेदनशील और सजीव चित्रण प्रत्येक कहानी को सशक्त बनाता है। सही सोच और दृष्टि की मजबूत नींव तो है ही। लोकभाषा से विलुप्त होते जा रहे शब्दों का ठेठ उच्चारण रचनाओं को आनंदमय बनाता है।

लगता है, व्यंग्य की तुलना में कहानी का विस्तार अनेक भावों और रसों के साथ न्याय करने में अधिक सक्षम है, विशेषकर करुणा और शांत भाव। एक सामान्य जन के सहज जीवन को कहानी के माध्यम से चित्रित किया जा सकता है।

व्यंग्य की तुलना कुछ हद तक कोर्टरूम में वकीलों और जजों की मौखिक टिप्पणियों से की जा सकती है, जबकि कहानी एक पूरा मुकदमा और उसका निर्णय जैसी लगती है।

- दो कहानियां 'एटिकेट' और 'जीवन-राग' पढ़ीं। जीवन के दो छोरों पर केंद्रित, दोनों कहानियां बहुत मार्मिक हैं और मन को छूने वाली। विषय-वस्तु लीक से हटकर है।

(डॉ. कुंदन सिंह परिहार एवं श्री जगत सिंह बिष्ट)

'एटिकेट' बाल-मनोविज्ञान की मूल्यवान केस-स्टडी है। वर्तमान शिक्षण पद्धति, एक 'नेचुरल चाइल्ड' को कैसे 'एडाप्टेड चाइल्ड' में ढाल देती है, जिससे उसका बचपन और सृजनशीलता गुम जाती है।

'जीवन-राग' में उम्र और गरीबी से असहाय हुए इंसान का सूक्ष्म चित्रण है, जिसे ठीक से इंसान भी नहीं माना जाता। वह खामोश रहकर सब बर्दाश्त करता है। अनुकूल स्थिति मिलने पर फिर कोपल निकलती हैं और उसकी भावनाओं का प्रस्फुटन होता है। इस मामले में वह खुशकिस्मत है, वरना घुट-घुटकर मर भी सकता था। दोनों कहानियां पढ़कर अच्छा लगा। कहानीकार को संवेदनशील अवलोकन और चित्रण के लिए साधुवाद।

- 'कांटा' कथा-संग्रह की सभी कहानियां बहुत अच्छी लगीं, कुछ तो मर्म को बहुत गहरे छू गईं।

एक कहानी पूरी करने के बाद, लगता था अगली कहानी पढ़ूं। यथार्थ से नजदीकी और सहजता कहानियों को पठनीयता प्रदान करती हैं। सब कुछ हमने आसपास घटित होते देखा है, लेकिन शायद उतनी संवेदना और दृष्टि न थी कि कथानक को पूर्णता में देख और समझ पाते।

आपको बहुत बहुत धन्यवाद और आभार इतनी उत्कृष्ट रचनाओं के लिए। बहुत आनंद आया और कुछ सुप्त चक्षु खुले। लंबे समय के बाद, ऐसा साहित्य हाथ में आया है कि एक एक रचना आनंद से तरबतर कर रही है। आभार, श्रद्धेय कुंदन सिंह परिहार जी। साधुवाद।

श्री जगत सिंह बिष्ट, मास्टर टीचर : हैप्पीनेस्स अँड वेल-बीइंग, हास्य-योग मास्टर ट्रेनर, लेखक, ब्लॉगर, शिक्षाविद एवं विशिष्ट वक्ता के अतिरिक्त एक श्रेष्ठ व्यंग्यकार, इंदौर

लघुकथा - कचरे वाला और नन्दी जी

डॉ. कुंदन सिंह परिहार

शरीफों का मुहल्ला है। रोज़ तड़के कचरा इकट्ठा करने वाला, अपनी गाड़ी खींचता, सीटी बजाता हुआ आता है। सब अपने अपने घर से प्रकट होकर कचरा-दान करते हैं और राहत की साँस लेते हैं।

नन्दी जी तुनुक मिजाज़ हैं। घर में थोड़ी थोड़ी बात पर भड़कते हैं। सफाई-पसन्द हैं। कचरे वाले को देखकर उनका माथा चढ़ता है। कचरे के डिब्बे में दूर से कचरा टपकाते हैं। मास्क के ऊपर से सिकुड़ी नाक नज़र आती है। देखकर कचरे वाले का मुँह बिगड़ता है। कई बार कह देता है, 'आप ही का कचरा है। हमारे घर का नहीं है। '

एक दिन नन्दी जी उससे उलझ गये। उसने गीला और सूखा कचरा अलग अलग डिब्बों में डालने को कहा तो वे उखड़ गये----'हम यही करते रहेंगे क्या?दूसरा काम नहीं है?पहले क्यों नहीं बताया?'

थोड़ी बहस हो गयी। अन्त में नन्दी जी उँगली उठाकर बोले, 'ऑल राइट, आप कल से हमारे घर से कचरा नहीं लेंगे। आई विल मैनेज इट। ' कचरे वाला 'ठीक है' कह कर आगे बढ़ गया।

भीतर आकर बोले, 'मैं कर लूँगा। जब वह कर सकता है तो हम क्यों नहीं कर सकते?'

मिसेज़ नन्दी अपने पति को जानती थीं, इसलिए कुछ नहीं बोलीं।

दूसरी सुबह कचरे वाला घर के सामने से निकल गया। रुका नहीं। नन्दी जी घर में बैठे रहे। बुदबुदाये, 'मिजाज़ दिखाता है!आई विल डू इट। '

घर में तीन दिन का कचरा इकट्ठा हो गया। अब सबकी नाक सिकुड़ने लगी। सबकी नज़रें नन्दी जी पर टिकने लगीं। नन्दी जी सबसे नज़र बचाते फिर रहे थे।

चौथे दिन वे तैयार हुए। स्कूटर पर कचरे की दो बकेट रखीं और आगे बढ़े। तिरछी नज़रों से देखते जा रहे थे कि कोई परिचित देख तो नहीं रहा है। भीतर से सिकुड़ रहे थे।

लंबे निकल गये, लेकिन कोई कचरे का कंटेनर नहीं दिखा। परेशान हो गये। सड़क के किनारे फेंकने पर कोई भी चार बातें सुना सकता था। आगे कुछ खेत थे। वहीं स्कूटर रोक कर चारों तरफ देखा, फिर पौधों के बीच में बकेट खाली करके भाग खड़े हुए। खेत में से एक रखवाला कुत्ता भौंकता हुआ उनके पीछे दौड़ा, लेकिन वे राम-राम करते निकल गये।

घर पहुँचकर लंबी साँस लेते हुए पत्नी से बोले, 'आई कान्ट डू इट। इट इज़ वेरी डिफ़ीकल्ट। कचरा फेंकने की कोई जगह ही नहीं है। कहाँ फेकें?'

अगली सुबह जब कचरे वाला आया तब मिसेज़ नन्दी गेट पर थीं। उसे रोककर बोलीं, 'कचरा लेना क्यों बन्द कर दिया, भैया?' कचरे वाला कैफ़ियत देने लगा तो थोड़ी देर सुनकर बोलीं, 'वे थोड़ा गुस्सैल हैं। क्या करें। आप खयाल मत करो। आगे से कचरा हमीं दिया करेंगे। यह थोड़ा सा प्रसाद है, बच्चों को दे देना। '

भीतर नन्दी जी मुँह पर दही जमाये बैठे थे। मिसेज़ नन्दी कचरा देकर लौटीं तो सबके चेहरे पर राहत का भाव आ गया। मुसीबत टल गयी थी। सुबह सुहावनी हो गयी थी। अब तक सब का मन कचरे में अटका था, अब लोगों की नज़र क्यारी के सुन्दर गुलाबों और सामने उठते सूरज के नारंगी गोले की तरफ गयी।

डॉ. कुंदन सिंह परिहार, जबलपुर

प्रख्यात अभिनेता और कलाकार सुरेन्द्र राजन के साथ

विचारों और मूल्यों को प्राथमिकता

श्री रमेश सैनी

कुंदन सिंह परिहार सहज सरल प्रकृति के हैं। उनमें किसी प्रकार का दिखावा नहीं दिखता हैं। उनकी कद काठी को वर्षों से देख रहा हूँ। छटाकभर परिवर्तन नहीं दिखा एकहरा बदन पहले भी थे और आज भी हैं। वे उसे मेन्टेन कर रखे हैं। शांत संयत ढंग से जीवन निर्वाह कर रहे हैं। उनमें अपने विचारों और मूल्यों के प्रति स्थिरता और दृढ़ता अन्दर तक धंसी दिखती हैं। ऐसे अनेक क्षण हमने देखे हैं जब उन्होंने विपरीत परिस्थतियों में अपने विचारों और मूल्यों को प्राथमिकता दी। इस प्रतिबद्धता से उन्हें थोड़ा बहुत खोना भी पड़ा। वे इस खोने और पाने के हिसाब नहीं रहे। और आज भी नहीं हैं। उनके बहुत ज्यादा दोस्त नहीं हैं, तो दुश्मन भी नहीं, हैं वैसे भी हर वय के लोगों से वैचारिक तदातम्य स्थापित कर लेते हैं। यही इनकी खूबी हैं। वे स्वभिमानी हैं। जो कि सभी को होना चहिये, पर कहीं - कहीं हठीले हैं। यह सार्वजनिक जीवन में दिखता नहीं हैं। इनके साथ रहने वाले इसे आसानी से अनुभव कर सकते हैं। मेरा उनके साथ लम्बे समय से साथ रहा हैं। उन्होंने अपने जीवन में साहित्य, अपना, कार्य, और परिवार से घालमेल नहीं किया। इसी तरह वे विधाओं में, कहानी और व्यंग्य में भी घालमेल करते नहीं दिखते हैं। जबकि उनका कहानी और व्यंग्य पर समानाधिकार हैं और स्वतंत्र रूप से कहानी और व्यंग्य लिखते हैं।

इनका बचपन राजशाही और रियासतों के बीच में बीता हैं। उन्होंने नीचे तबके, कमजोर, दलित वर्ग, आदि पर सामंतों द्वारा किये अत्याचार को पास से देखा हैं। इस अमानवीयता से सामंती प्रवृत्तियों के प्रति विस्तृष्णा हो गयी हैं। इसका प्रभाव इनके सहित्य पर आसानी से दिखा जाता हैं। आपने समाज में न व्याप्त तमाम तरह की वेदना, असंगतियों को अन्दर तक महसूस किया हैं। जिसे उनकी रचनाओं में आसानी से पढ़ा जा सकता हैं। यदि उनकी कहानियों के पात्रों को सिरे से खोज की जाए। तो ऐसा लगता हैं कि आप उनसे कहीं न कहीं मिले हैं। यहाँ उनकी एक महत्वपूर्ण कहानी पितृहंता की बात करूंगा देश की स्वतंत्रता के बाद आम जनता और युवा पीढ़ी ने शानदार भविष्य का सपना देखा था कि देश जल्दी से बेरोजगारी गरीबी, असमानता से मुक्त हो जाएगा, पर यह सपना जल्दी टूट गया। यह देश के युवा पीढ़ी के लिए बड़ी विडम्बना थी और यह विडम्बना

इस कहानी में देख सकते हैं। यह कहानी, युवा पीढ़ी के सपने देखने की हैं। कहानी का पात्र युवक घनश्याम हैं जिसके पिता कोर्ट में चपरासी हैं। उसका परिवार निम्न वर्ग का हैं। पर उसके सपने बड़े हैं। स्कूल में उसके साथी पूंजीवादी परिवार के हैं, जो उसका उपयोग अपने मनोरंजन के लिए करते हैं। वह अपने में हीरो की कल्पना करता हैं। वह अपने मित्रों के कहने पर वह अमिताभ बच्चन के संवाद बोलता हैं। वह उसी स्वप्न संसार में खो जाता हैं, और परिणाम स्वरुप फेल हो जाता हैं। इससे उसका स्कूल छूट जाता हैं। एक मित्र की सिफारिश से वह कपड़े की दुकान में काम करने लगता हैं जबकि उसके दोस्त आगे पढाई जारी रखते हैं। वह यहाँ पर भी उपेक्षा, दुत्कार और अपमान सहता हैं, पर मजबूरन काम करना पड़ता हैं। विवाह हो जाता हैं। बच्चे हो जाते हैं। परेशानियों से लड़ते - लड़ते हुए वह शराब पीने लगता हैं थोड़ी पीने से ही उसका दिमाग गड़बड़ा जाता हैं। अपना गुबार निकालने लगता हैं, यथा, यह भी साली यह कोई जिन्दगी हैं सवेरे से रात तक छाती मारो, लेकिन हाथ खाली का खाली। सोचा था बड़ा आदमी बनूँगा पैसा कमा लूँगा लेकिन कपड़ों का गट्ठर ढोते ही कटती हैं। सब बेकार हैं, फालतू हैं, फिर टुकड़ों में अपनी सेठ को गालियाँ देता, और अपने घर परिवार को कोसता हैं। बोलने के साथ हिलकर रोने लगता। उसके आसपास जो लोग होश में होते वे मजा लेने लगते। स्वतंत्रता के बाद दिशाहीन विकास और व्यवस्था की कल्पना और नवपूंजीवाद, भ्रष्टाचार के आलोक में युवा पीढ़ी के सपनों को बिखेरने में खासी मदद की। घनश्याम का जीवन अधूरे सपनों के टूटने की बेहोशी में व्यतीत होने लगता हैं। अपने पिता से विद्रोह उसकी असफलता का परिणाम था हैं। शराब के नशे में रोज - रोज पिता से लड़ाई का खेल खेलते - खेलते एक दिन अपनी लाठी अपने पिता के पेट में गोंच देता हैं। फलस्वरुप पिता मर जाता हैं। पुलिस की प्रताड़ना से बचने और पितृहंता की आत्मग्लानि से वह आत्महत्या कर लेता हैं। कहानी का अंत एक दिशाहीन भटके हुए युवक की आत्महत्या का कारुणिक अंत हैं। कहानी के अंत में पाठक विचारशून्य, कुछ पल शांत और मौन रह जाता हैं।

इस कहानी का कथ्य पाठक के समक्ष सिनेमा के दृश्यों की भांति आगे बढ़ता हैं। इस कहानी की भाषा और शिल्प में किसी प्रकार की कसीदाकारी का मैजिक नहीं हैं बस सीधे सहज, सरल ढंग से पाठक को झकझोरती हैं। यह लेखक कुंदन सिंह परिहार कमाल हैं।

बस यही कमाल व्यंगकार परिहार ने व्यंग रचनाओं में दिखाया हैं। व्यंग्य में परिहार जी के विषय समाज के निचले तबके के शोषित, वंचित समाज के होते हैं जिससे हम रोज रूबरू होते हैं। हम महसूस करते हैं कि इन्हें पहले हमने देखा हैं। इनसे हमारा रोज सामना पड़ता हैं। अमूमन लोग

इनसे बचते हैं। पर परिहार जी रोज इनसे मुठभेड़ करते हैं। फिर उनकी प्रकृति और प्रवृत्ति को उजागर करते हैं। शासनतंत्र में व्याप्त अराजकता और नव पूंजीवाद के संक्रमण से विकसित सोच ने सबको विचलित कर दिया हैं। बेशर्मी की सीमा को पार गये लोग अपराधिक दंड को भी आय के स्त्रोत का नया रूप मानते हैं। उनका व्यंग्य 'चुन्नीलाल की मुअत्तली' इसका बढ़िया उदाहरण हैं। चुन्नीलाल बैंक से पैसा निकाल हड़प जाते हैं। इसका कारण वे और उनका एक साथी सस्पेंड कर दिए जाते हैं इस घटना से चुन्नीलाल खुश हैं। बेशर्मी से इसका इजहार भी से करते हैं। यथा- मैंने पूछा - सस्पेंड हो गए, क्यों? वह भौहें टेढ़ी करके बोले - कल का अखबार पढ़ा था मैंने कहा - पढ़ा तो था। वह तिरस्कार भाव से बोला - ख़ाक पढ़ा था। मेरी समझ में नहीं आता तुम लोग अखबार खरीदते ही क्यों हैं? कल के अखबार में सारी घटना छपी हैं। मेरा नाम भी छपा हैं। पहली बार अखबार में मेरा नाम छपा हैं।

मैंने पूछा - कौन सी घटना? क्या छपा हैं? वह लापरवाही से बोला - मेरे ऊपर चार लाख की गड़बड़ी का आरोप हैं। मेरे साथ चंदू भी सस्पेंड हुआ।

घबराहट के मारे सांस जहाँ की वहाँ रह गयी। मैंने कहा - कैसे हुआ।

वह बोला - अरे भाई, हम लोग बैंक से दफ्तर का पैसा लेकर लौट रहे थे। रास्ते में स्कूटर खड़ी करके लघुशंका करने लगे। रुपयों का बैग पीछे स्कूटर में रखा था। लघुशंका के बाद मुड़कर देखा तो बैग गायब हो गया। बहुत से लोग आ रहे थे किसे दोष दें।

यह नवपूंजीवाद के समय का अति महत्वाकांक्षा का उदाहरण हैं। इस दौड़ में आदमी अपना सम्मान ईमानदारी छोड़कर अपराध की ओर बढ़ रहा है। नैतिक मूल्य का अवमूल्यन हो गया हैं। इस प्रवृत्ति का आदमी इस आर्थिक अपराध को महिमामंडित करता हैं। उसके लिए अपराध ही नहीं हैं। पहले लगभग चालीस पचास वर्ष पूर्व व्यक्ति का मान सम्मान सर्वोपरि होता था। व्यक्ति के जीवन में अर्थ का मूल्य जीवन यापन की आवश्यकता के समान था आधिक की चेष्टा भी नहीं करता था। अब सब मूल्य बदल गए हैं। शासकीय पैसा को अपना पैसा समझकर इसे हड़पना आसान समझ लिया। देश में यही स्थिति हैं कि बड़े स्तर पर लाखों करोडो का चूना लगाकर लोग देश से भाग जाते हैं। और हमारी शासन की विधि व्यवस्था देखिए की अब करोड़ों रुपये खर्च कर उन्हें देश में वापिस लाने का प्रयास कर रही हैं। यह हमारी राजनीतिक इक्छाशक्ति, विधि व्यवस्था में अराजकता का होना आसानी से पढ़ा जा सकता हैं और इसको कुंदन सिंह परिहार ने समाज के सामने सरल सहज ढंग से उजागर कर दिया। आज की सामाजिक व्यवस्था में नैतिक मूल्य सामाजिक और व्यक्तिगत सम्मान की प्राथमिकता धरी की धरी रह गई वे समाज में व्याप्त पाखंड, प्रपंच

ठकुरसुहाती दकियानूसीपन, दोमुहांपन, चाटुकारिता शोषण, अन्याय, असमानता आदि विषयों पर खूब लिखा हैं। वे व्यक्ति की प्रकृति और प्रवृत्ति को पकड़ने में कुशल हैं अपने पात्रों के माध्यम से समाज में व्याप्त बुराइयों पर प्रहार सहज ढंग से करते हैं। वे इन घटनाओं के प्रति सतर्क रहते हैं। इन बुराइयों को समाज के सामने व्यक्त करने के लिए किस्सागोई सहारा कर लेते हैं इस किस्सागोई में उनका उद्देश्य पूरा हो जाता हैं उनका कहना हैं कि यदि व्यंग्यकार रचना को संवारने लग जाए तो उसका उद्देश्य नष्टहो सकता हैं रचना साफ़ और समझ में आनी चहिए इस मामले में परिहार जी की व्यंग्य रचनाएं भाषा की दुरुहता क्लिष्टता से मुक्त हैं इसलिए पाठक रचना से सीधा संबंध स्थापित कर लेता हैं और रचना की पठनीयता बढ़ जाती हैं। यह विशेष गुण से पाठक रचना को स्मरण करने में समर्थ होता हैं। उनकी एक और रचना 'जनसेवा के दौरे' राजनीतिक नेताओं के पाखंड और प्रपंच पर करारा प्रहार हैं, इसमें नेता के साथ उनके चेला चौपाटी का भी पाखंड उजागर हुआ हैं। नेता घर पर हैं। उनके मंत्री बनने की संभावना प्रबल हैं तभी उनके भक्तगण उनके साथ हैं इस पर एक टिप्पणी देखिये - 'उनके दुधारू गाय बनने की उम्मीद में भक्तजनों और शुभचिंतकों की उम्मीद बढ़ने लगे हैं। '

यह टिप्पणी राजनीति के पूरे चरित्र और चाटुकारिता पर एक तीखा व्यंग्य हैं। इसी मिजाज की एक अन्य रचना हैं जो चाटुकारिता की प्रवृत्ति को निम्न स्तर पर ले जाती हैं। यह प्रवृत्ति शासकीय कार्यालयों में अफसरों और अधीनस्थ कर्मचारी के बीच बड़ी सहजता से देखी जा सकती हैं। आदमी स्वार्थ और पद लिप्सा के लिए अपना सम्मान को दांव पर लाकर पाखंड और प्रपंच करता हैं। छेदीलाल लांबा साहब और पत्नी को अपनी भक्ति से पदोन्नति हेतु झूठी चाटुकारिता करता हैं और उन्हें महसूस कराता हैं कि आप तो हमारे भगवान हैं। इस सम्बन्ध में रचना में एक सूत्र वाक्य आया हैं अपना दफ्तर और अपने साहब का बंगला मंदिर के समान होते हैं यह चाटुकारिता की इंतिहा पराकाष्ठा हैं। छेदीलाल को पदोन्नति नहीं मिली। तब वह अपना चरित्र उजागर करके कहता हैं, जब अफसर में दमख़म नहीं होगा तो यही होगा गधे घोड़े में फर्क करने की तमीज भी तो होनी चाहिये। ' और लांबा साहब की योग्यता पर सवाल उठा देता हैं।

परिहार जी अपनी विचारधारा के प्रति प्रतिबद्ध हैं यह विचारधारा मानवीय सरोकारों, संवेदना, दबे कुचले लोगों, दकियानूसी, अंध - विश्वास आदि प्रवृत्तियों से सीधे संबंध स्थापित करती हैं। जिससे उनका लेखन सीधे - सीधे मानवीय सरोवरों के पक्ष में खड़ा दिखता हैं। वे मानवीय मूल्यों और नैतिक मूल्यों की वकालत करते हुए कहते हैं कि मेरा लेखन मनुष्य को बेहतर बनाने के लिए हैं।

श्री रमेश सैनी, त्रिमूर्ति नगर, जबलपुर

लघुकथा - एक छोटी सी भूल

डॉ. कुंदन सिंह परिहार

हम एक शिविर में थे। शिविर बस्ती से दूर प्रकृति के अंचल में, वन विभाग की एक इमारत में लगा था। इमारत के अगल-बगल और सामने दूर तक ऊँचे पेड़ थे। खूब छाया रहती थी। रात भर पेड़ हवा से सरसराते रहते।

उस सबेरे हम चार लोग इमारत के पास टीले पर बैठे थे। दूर दूर तक पेड़ ही पेड़ थे और हरियाली। उनके बीच से बल खाती काली सड़क। कहीं-कहीं इक्के दुक्के कच्चे घर। कुछ दूर पुलियाँ बन रही थीं। वहाँ कुछ हरकत दिखायी पड़ती थी। शायद कोई इमारत बनाने की तैयारी थी।

पटेल की सिगरेट खत्म हो गयी थी। उसे तलब लगी थी। करीब एक फर्लांग दूर सड़क के किनारे दूकान थी, लेकिन पटेल अलसा रहा था।

तभी पास से एक पन्द्रह सोलह साल का लड़का निकला। पुरानी, गन्दी, आधी बाँह की कमीज़ और पट्टेदार अंडरवियर। पैर नंगे।

पटेल ने उसे बुलाया। पचास का नोट दिया, कहा, 'ज़रा एक सिगरेट का पैकेट ले आओ। '

लड़का बोला, 'साहब मुझे काम पर पहुँचना है। देर हो जाएगी। '

पटेल बोला, 'अरे, नहीं होगी देर। दौड़ के ले आओ। '

लड़का नोट लेकर चला गया। हम वहीं बैठे गप लड़ाते रहे।

थोड़ी देर में लड़का लौटा। उसने पटेल को पैकेट और बाकी पैसे दिये। पटेल ने पैसे जेब में डाल लिये और पैकेट खोलने लगा।

लड़का एक क्षण खामोश रहा। फिर बोला, 'साहब, दुकान पर ठेकेदार मिल गया था। हमें वहाँ देख कर नाराज हो गया। बोला, अब काम पर आने की जरूरत नहीं है। यहीं आराम करो। '

पटेल ने ओठों में सिगरेट दबाये, माथा सिकोड़ कर पूछा, 'तो?'

लड़का बोला, 'हमारी आज की मजूरी चली गयी, साहब। '

पटेल अपना असमंजस छिपाने के लिए माचिस जलाकर सिगरेट सुलगाने लगा।

आधे मिनट हम सब खामोश बैठे रहे। फिर पटेल उठकर खड़ा हो गया, बोला, 'चलो, नाश्ते का वक्त हो गया। '

हम सब उस लड़के से आँखें चुराते, धीरे-धीरे इमारत की तरफ बढ़ने लगे।

लड़का वहीं खड़ा हमें देखता रहा। इमारत में घुसने से पहले हमने घूम कर देखा। वह हमारी तरफ देखता वहीं खड़ा था।

डॉ. कुन्दन सिंह परिहार, जबलपुर

डॉ कुन्दन सिंह परिहार : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

श्री जय प्रकाश पाण्डेय

25 अप्रैल 1939 को जन्मे डॉ कुंदन सिंह परिहार जी ने मध्यप्रदेश और महाराष्ट्र के कालेजों में 40 साल से ज्यादा अध्यापन कार्य किया है। व्यंग्य लेखन और कहानी लेखन में उन्होंने लकीर का फकीर बनना कभी स्वीकार नहीं किया। उन्होंने बहुत सरल भाषा और बनावटहीन अपनी मौलिक सहज शैली में कहानी और व्यंग्य पर अलग अलग तरह के प्रयोग किए हैं। मेरा ख्याल है कि उन्होंने कभी छपने के लिए नहीं लिखा बल्कि उनका लिखा छपता ही रहा। 82 साल की उम्र में भी सीखने की ललक उनमें इतनी तीव्र है कि उन्होंने सोशल मीडिया में भी अपनी खासी पहचान बना करखी है, वह भी तब जब इनकी उम्र के लेखक सोशल मीडिया को कोसते हैं।

उनकी अधिकांश रचनाओं को पढने के बाद ऐसा लगता है कि परिहार जी अपने आसपास के लोगों की मनोदशा को पढ़कर उसकी गहरी पड़ताल करते हैं। पात्रों के मन की बात पकड़ने में वे उस्ताद हैं। उनका पात्र क्या सोच रहा है, उन्हें पता चल जाता है और उसके अनुसार उनके पात्र अपनी बात कहते हैं। परिहार जी के व्यंग्य पाठकों को झकझोरते हैं मूंधी चोट की मार करते हैं और पाठक के अंदर मनोवैज्ञानिक सोच पैदा करते हैं। उन्होंने अपने आसपास बिखरी विसंगतियों को हमेशा पकड़ कर चोट की और दोगले चरित्र वालों का चरित्र उकेर कर अपने व्यंग्य के जरिए जनता को दिखाया है।

परसाई जी तो व्यंग्य पुरोधा थे ही, उन्होंने व्यंग्य को एक सशक्त विधा बनाया और साहित्य जगत को बता दिया कि व्यंग्य मनोरंजन मात्र के लिए नहीं है। व्यंग्य अपना सामाजिक दायित्व निभाना भी बखूबी जानता है। परिहार जी ने अपनी परवाह न करके समाज के प्रति अपने कर्तव्यों का निर्वाह करने का धर्म निभाया है। वे अपनी रचनाओं में जनता के पक्ष में खड़े दिखते हैं।

85 साल में भी वे निरंतर सक्रिय हैं और अभी अभी उनका एक व्यंग्य संग्रह “नवाब साहब का पड़ोस” प्रकाशित हुआ है। वे 1960 से आज तक लगातार कहानी और व्यंग्य लिखने में अपनी कलम चला रहे हैं। पांच कथा संग्रह एवं तीन व्यंग्य संकलन के प्रकाशित होने के बाद भी हर माह

व्यंग्यम गोष्ठी में वे नया व्यंग्य लिखकर पढ़ते हैं। वे सिद्धांतवादी हैं, स्वाभिमानी हैं, किन्तु, अभिमानी कदापि नहीं। उनकी अपनी अलग तरह की धाक है। चेलावाद और गुटबंदी से वे चिढ़ते हैं। यही कारण है कि उनकी कलम एक अलग साफ रास्ता बनाकर चलती रही है।

धुन के इतने पक्के कि साहित्यिक कार्यक्रमों में एनसीसी के अफसर की ड्रेस में दिखने में कभी संकोच नहीं किया। साहित्यिक कार्यक्रमों में अपनी वजनदार बात से कभी श्रोताओं को चौंकाते रहे तो कभी अपनी सहज सरल भाषा में लिखे व्यंग्यों से चिकोटी काटते रहे। उनकी कहानियों में भी व्यंग्य की एक अलग तरह की धारा बहती मिलती है। प्रतिबध्द विचारधारा के धनी परिहार जी की सोच मनुष्य की बेहतरी के लिए रचनाएं लिखने से है।

हमारी मुलाकात उनसे 40-42 साल पुरानी है और इन वर्षों में हमने कभी किसी प्रकार की दिखावे की प्रवृत्ति नहीं देखी, 42 साल से उनकी कदकाठी और चश्मे से झांकती निगाहों में वे शांत संयत धीर गंभीर दिखे। स्वाभिमानी जरुर हैं पर हर उम्र के लेखक पाठकों के बीच लोकप्रिय हैं।

हरीशंकर परसाई जी ने परिहार जी की रचनाओं को पढ़कर लिखा है "परिहार के पास तीखी नजर और प्रगतिशील दृष्टिकोण है, वे राजनीति, समाजसेवा, शिक्षा संस्कृति, प्रशासन आदि के क्षेत्रों की विसंगतियों को कुशलता से पकड़ लेते हैं"

अपनी कहानियों के पात्रों के बारे में परिहार जी कहते हैं - "मेरे पात्र बड़े प्यारे हैं कमजोर, निश्छल और भोले भाले हैं, ईमानदार और आसानी से ठगे जाने वाले लोग हैं। वे बिना कोई हलचल मचाए दुनिया में आते हैं और बेनाम, खामोशी से बिदा हो जाते हैं। "

डॉ परिहार जी अगली पीढ़ी के लिए चिंतित हैं क्योंकि अगली पीढ़ी के सामने हर तरह के संकट ही संकट प्रगट हो रहे हैं ऐसी स्थिति में वे कहते हैं कि- "ऐसे विकट माहौल में प्रार्थना की जा सकती है कि हमारा प्रजातन्त्र सच्चा प्रजातंत्र बने और हमारे जन प्रतिनिधि सच्चे बनकर प्रजा की समस्याओं के समाधान में संलग्न हों। "

आदरणीय डॉ परिहार जी मात्र नई पीढ़ी ही नहीं अपितु हमारी पीढ़ी के लिए भी आदर्श हैं।

श्री जय प्रकाश पाण्डेय, जबलपुर

लघुकथा - मज़ाक - डॉ. कुंदन सिंह परिहार

डॉ. कुंदन सिंह परिहार

दीपक जी मकान बनवा रहे थे। बीस साल किराये के मकान में रहे। उस मकान की छत टपकती थी। दीवारें बदरंग थीं और फर्श टूटा- फूटा। उसी मकान में दीपक जी ने बीस साल काट दिये। अब बड़ी हसरत से अपना मकान बनवा रहे थे--- सागौन के खिड़की-दरवाज़े, फर्श में काले- सफेद पत्थर, बाथरूम और रसोईघर में रंग- बिरंगी टाइल्स और दीवारों पर मँहगा चमकदार पेन्ट। दीपक जी एक एक चीज़ को बारीकी से देखते रहते थे। मकान को बनाने में वे अपने मन की सारी भड़ास निकाल देना चाहते थे।

मकान से उन्हें बड़ा मोह हो गया था। अकेले होते तो मुग्ध भाव से दरो-दीवार को निहारते रहते थे। ऐसे ही घंटों गुज़र जाते थे और उन्हें पता नहीं चलता था। अपने इस कृतित्व के बीच खड़े होकर उन्हें भारी सुख मिलता था। लगता था जीवन सार्थक हो गया।

मकान को खुद देखकर उनका मन नहीं भरता था। उन्हें लगता था हर परिचित-मित्र को अपना मकान दिखा दें। मुहल्ले में कोई ऐसा नहीं बचा था जिससे उन्हें मकान का मुआयना न कराया हो। दूसरे मुहल्लों से रिश्तेदारों-मित्रों के आने पर भी वे पहला काम मकान दिखाने का करते थे। चाय-पानी बाद में होता था, पहले मकान के दर्शन कराये जाते थे। मकान दिखाते वक्त दीपक जी मेहमान के मुँह पर टकटकी लगाये, प्रशंसा के शब्दों की प्रतीक्षा करते रहते। प्रशंसा सुनकर उन्हें बड़ा संतोष मिलता था।

उनकी दीवानगी का आलम यह था कि किसी के थोड़ा सा भी परिचित होने पर वे नमस्कार के बाद अपना मकान देखने का आमंत्रण पेश कर देते। कोई ज़रूरी काम का बहाना करके खिसकने की कोशिश करता तो दीपक जी कहते---'ऐसा भी क्या जरूरी काम है? दो मिनट की तो बात है। ' और वे उसे किसी तरह गिरफ्तार करके ले ही जाते।

यह उनका नित्यकर्म बन गया था। दिन में दो चार लोगों को मकान न दिखायें तो उन्हें कुछ कमी महसूस होती रहती थी। सड़क से किसी न किसी को पकड़ कर वे अपना अनुष्ठान पूरा कर ही लिया करते थे।

एक दिन दुर्भाग्य से मकान दिखाने के लिए दीपक जी को कोई नहीं मिला। सड़क के किनारे भी बड़ी देर तक खड़े रहे, लेकिन कोई परिचित नहीं टकराया। उदास मन से दीपक जी लौट आये। बड़ा खालीपन महसूस हो रहा था।

शाम हो गयी थी। अब किसी के आने की उम्मीद नहीं थी। निराशा में दीपक जी ने इधर-उधर देखा। सामने एक मकान बनना अभी शुरू ही हुआ था। उसका चौकीदार रोटी सेंकने के लिए लकड़ियों के टुकड़े इकट्ठे कर रहा था।

दीपक जी ने इशारे से उसे बुलाया। पूछा, 'हमारा मकान देखा है?'

वह विनीत भाव से बोला, 'नहीं देखा साहब। '

दीपक जी ने पूछा, 'कहांॅ के हो?'

वह बोला, 'इलाहाबाद के हैं साहब। '

दीपक जी ने कहा, 'वहाँ तुम्हारा मकान होगा। '

चौकीदार बोला, 'एक झोपड़ी थी साहब। नगर निगम ने गिरा दी। चार बार बनी, चार बार गिरी। अब बाल-बच्चों को लेकर भटक रहे हैं। '

दीपक जी ने उसकी बात अनसुनी कर दी। बोले, 'आओ, तुम्हें मकान दिखायें। '

वे उसे भीतर ले गये। फर्श के खूबसूरत पत्थर, किचिन की टाइलें, पेन्ट की चमक, दरवाज़ों का पॉलिश, रोशनी की चौकस व्यवस्था--- सब उसे दिखाया। वह मुँह बाये 'वाह साहब', 'बहुत अच्छा साहब' कहता रहा।

संतुष्ट होकर दीपक जी बाहर निकले। चौकीदार से बोले, 'तुम अच्छे आदमी हो। बीच-बीच में आकर हमारा मकान देख जाया करो। ये पाँच रुपये रख लो। सब्जी भाजी के काम आ जाएँगे। '

चौकीदार उन्हें धन्यवाद देकर अपनी उस अस्थायी कोठरी की तरफ बढ़ गया जहाँ बैठा उसका परिवार इस सारे नाटक को कौतूहल से देख रहा था।

डॉ. कुन्दन सिंह परिहार, जबलपुर

तय करना कठिन है कि वे पहले व्यंग्यकार हैं या कहानीकार

श्री विवेक रंजन श्रीवास्तव

ई-अभिव्यक्ति के माध्यम से हर हफ्ते वरिष्ठ व्यंग्यकार, कहानीकार श्री कुंदन सिंह परिहार जी को पढ़ने के अवसर सारी दुनियां को हर हफ्ते मिलते हैं। अब तक साप्ताहिक स्तंभ में उनकी २३८ रचनायें हम प्रकाशित कर चुके हैं। उनकी उम्र ८५ पार हो रही है, उनकी रचनायें पढ़ें तो स्पष्ट समझ आता है कि वे खामोशी से दुनियां को पढ़ कर ही परिपक्व अनुभव से लिखते हैं। उनकी एक कहानी है दद्दू। समाज में बुजुर्गों की जो स्थितियां बन रही हैं यह कहानी उस परिवेश, परिस्थितियों को रेखांकित करती है। परिहार जी के पांच कहानी संग्रह तथा तीन व्यंग्य संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं, उनका व्यंग्य संग्रह नबाब साहब का पडोस चर्चित रहा है। तीसरा बेटा, हासिल, वह दुनिया, शहर में आदमी एवं कांटा शीर्षकों से छपे उनकी कहानियों एवं विशेष रूप से लघुकथाओ में उनकी व्यंग्यात्मक लेखन शैली दृष्टिगत होती है। उन्हें १९९४ में ही हिन्दी साहित्य सम्मेलन का वागीश्वरी सम्मान प्राप्त हो चुका है। साहित्य की राजनीति और खेमेबाजी से दूर वे चिंतनशील, शांत लेकन करते नजर आते हैं। उनके लेखन में किंचित वामपंथी प्रभाव भी दिखता है। उनका समूचा जीवन जबलपुर में व्यतीत हुआ है, वे लगभग चालीस वर्षो तक महाविद्यालयीन शिक्षा से जुड़े रहे और वर्ष २००१ में जबलपुर के प्रतिष्ठित जी एस कालेज के प्राचार्य पद से सेवा पूरी कर अब पूर्णकालिक रचनाकार के रूप में साहित्यिक योगदान कर रहे हैं। उन्होंने अपने शैक्षिक जीवन में भांति भाति के छात्रों के जीवन को सकारात्मक दिशा दी। घर परिवार में भी वे साहित्यिक वातावरण और संस्कार अगली पीढ़ी तक पहुचाने में सफल रहे हैं।

ई-अभिव्यक्ति में उनके साहित्य संसार की रचनाओ, कहानियो, व्यंग्य का इंतजार पाठक हर हफ्ते करते हैं।

श्री विवेक रंजन श्रीवास्तव 'विनम्र'
ए २३३, ओल्ड मीनाल रेसीडेंसी, भोपाल, ४६२०२३, मो ७०००३७५७९८

कथाकार - व्यंग्यकार डॉ. कुन्दन सिंह परिहार

श्री प्रतुल श्रीवास्तव

सामान्यतः कुर्ता पजामा धारण करने वाले, औसत कद काठी के डॉ. कुन्दन सिंह परिहार देश के शिक्षा और साहित्य जगत के अति विशिष्ट व्यक्ति हैं। ज्ञान के प्रकाश से आलोकित मुख मंडल, कुछ खोजती / ढूंढती, जिज्ञासा से भरी आंखें और लोगों को स्वयं से जोड़ लेने वाली आत्म विश्वास से परिपूर्ण प्रभावशाली वाणी जबलपुर वासी राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त वरिष्ठ कथाकार, व्यंग्यकार डॉ. कुन्दन सिंह परिहार के व्यक्तित्व का श्रंगार हैं।

डॉ. परिहार ने जिस सहजता - सरलता,कोमलता और करुणा के साथ प्रेम और वात्सल्यता की भावना से भरे पारिवारिक व सामाजिक रिश्तों पर कथाएं लिखी हैं उतनी ही खूबी से उन्होंने बनते - बिगड़ते रिश्तों, सामाजिक विसंगतियों, अत्याचार, अनाचार व एक आम कामकाजी व्यक्ति की परेशानी और बेचारगी को भी अपनी कहानियों के माध्यम से समाज के सम्मुख प्रस्तुत किया है। आपके द्वारा रचित कहानियां सम्पूर्ण कथा तत्वों के साथ आपके श्रेष्ठ लेखन का प्रमाण हैं। वहीं जब आप बिखरते टूटते रिश्तों, सामाजिक विसंगतियों, अत्याचार, अनाचार, राजनीति आदि पर सीधा प्रहार करने वाले करारे व्यंग्य लिखते हैं तो लगता जैसे आपको बज्र निर्माण से बची दधीचि की अस्थियों से बनी सख्त कलम मिल गई हो जो आपकी मर्जी से बिना भेदभाव चलती जा रही है। आपकी कहानियों में परिस्थितियों व प्रसंगवश सहज ही व्यंग्य प्रवेश पा जाता है इसी तरह आपके व्यंग्य कथात्मक प्रवाह पाकर पाठकों पर पकड़ बनाए रखते हैं। भाषा शैली सहज सरल, प्रवाह पूर्ण है।

25 अप्रैल 1939 को मध्यप्रदेश के छतरपुर जिले के ग्राम अलीपुरा में आपका जन्म हुआ। आपने अंग्रेजी साहित्य एवं अर्थशास्त्र में एम.ए., पीएच-डी., एल एल.बी. की उपाधियां प्राप्त कर अपनी जन्म भूमि को गौरवान्वित किया। मध्यप्रदेश और महाराष्ट्र के महाविद्यालयों में अध्यापन के उपरांत आपने जबलपुर के गोविंदराम सेकसरिया अर्थ वाणिज्य महाविद्यालय में सेवाएं दीं और प्राचार्य पद से सेवा निवृत्त हुए।

डॉ. कुन्दन सिंह परिहार 1960 से निरंतर कहानी और व्यंग्य लेखन कर रहे हैं। आपकी दो सौ से अधिक कहानियां और इतने ही व्यंग्य देश की प्रतिष्ठित पत्र - पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं।

आपके द्वारा रचित प्रमुख कथा संग्रह हैं - तीसरा बेटा, हासिल, वह दुनिया, शहर में आदमी, कांटा। आपके प्रकाशित व्यंग्य संग्रहों अंतरात्मा का उपद्रव, एक रोमांटिक की त्रासदी और नवाब साहब का पड़ोस आदि ने आपको राष्ट्रीय ख्याति प्रदान की। कथा संग्रह "वह दुनिया" के लिए 1994 में आपको वागीश्वरी पुरस्कार तथा 2004 में कहानी "नई सुबह" के लिए राजस्थान पत्रिका का सृजनात्मकता पुरस्कार प्राप्त हो चुका है। अनेक संस्थाओं, संगठनों से सम्मानित आप नगर के युवा रचनाकारों के प्रेरणा स्रोत, मार्गदर्शक व जबलपुर के गौरव हैं। आज 25 अप्रैल को आपके 85 वें जन्मोत्सव पर आपके समस्त मित्रों, परिचितों, प्रशंसकों और व्यंगम परिवार की ओर से आपको स्वस्थ, सुदीर्घ, यशस्वी जीवन की शुभकामनाएं।

श्री प्रतुल श्रीवास्तव
संपर्क - 473, टीचर्स कालोनी, दीक्षितपुरा, जबलपुर - पिन - 482002 मो. 9425153629

हम सब के अग्रज, ख्यातिलब्ध कथाकार, व्यंग्यकार डॉ कुंदन सिंह परिहार जी के जन्मदिन की 85 वीं वर्षगांठ पर बधाई और शुभकामनाएं।वे शतायु हों। उनकी प्रेरणा और मार्गदर्शन ने हम लोगों को व्यंग्य लिखना सिखाया। उन्हें सादर प्रणाम।

श्री सुरेश मिश्र विचित्र
वरिष्ठ व्यंग्यकार संस्थापक - साहित्य सहोदर

व्यंग्य विमर्श - व्यंग्य लेखन में पक्षधरता

डॉ. कुंदन सिंह परिहार

व्यंग्य पक्षधरता से ही उपजता है। लेखक व्यंग्य-लेखन की ओर इसीलिए प्रवृत्त होता है क्योंकि उसे लगता है कि समाज में अन्याय, असमानता, शोषण है और उसे शोषित-पीड़ित के पक्ष में खड़े होना चाहिए। व्यंग्यकारों के अतिरिक्त भारतेन्दु, प्रेमचंद, अमरकांत, भीष्म साहनी जैसे लेखकों की पक्षधरता स्पष्ट है। परसाई ने लिखा---'मैं निहायत बेचैन मन का संवेदनशील आदमी हूँ, मुझे चैन कभी मिल ही नहीं सकता। - -मैंने लेखन को दुनिया से लड़ने के लिए हथियार के रूप में अपनाया होगा। मैंने सोचा होगा रोना नहीं, लड़ना है। - -व्यंग्य एक गंभीर चीज़ है, हँसने हँसाने की चीज़ नहीं हो। - -वास्तव में मैं बहुत दुखी आदमी हूँ, दुखी होकर लिखता हूँ। - -मैं इसीलिए दुखी हूँ कि देखो मेरे समाज का क्या हाल है, मनुष्य का क्या हाल होता जा रहा है। 'कबीर ने भी कहा---'सुखिया सब संसार, खावे और सोवे; दुखिया दास कबीर, जागे और रोवे। 'यह रोना अपने और अपने परिवार के लिए नहीं होता, संसार के सभी अन्याय-पीड़ितों के लिए होता है। बिना संवेदना के सार्थक व्यंग्य-लेखन संभव नहीं है। यह महज़ मनोरंजन की चीज़ नहीं है।

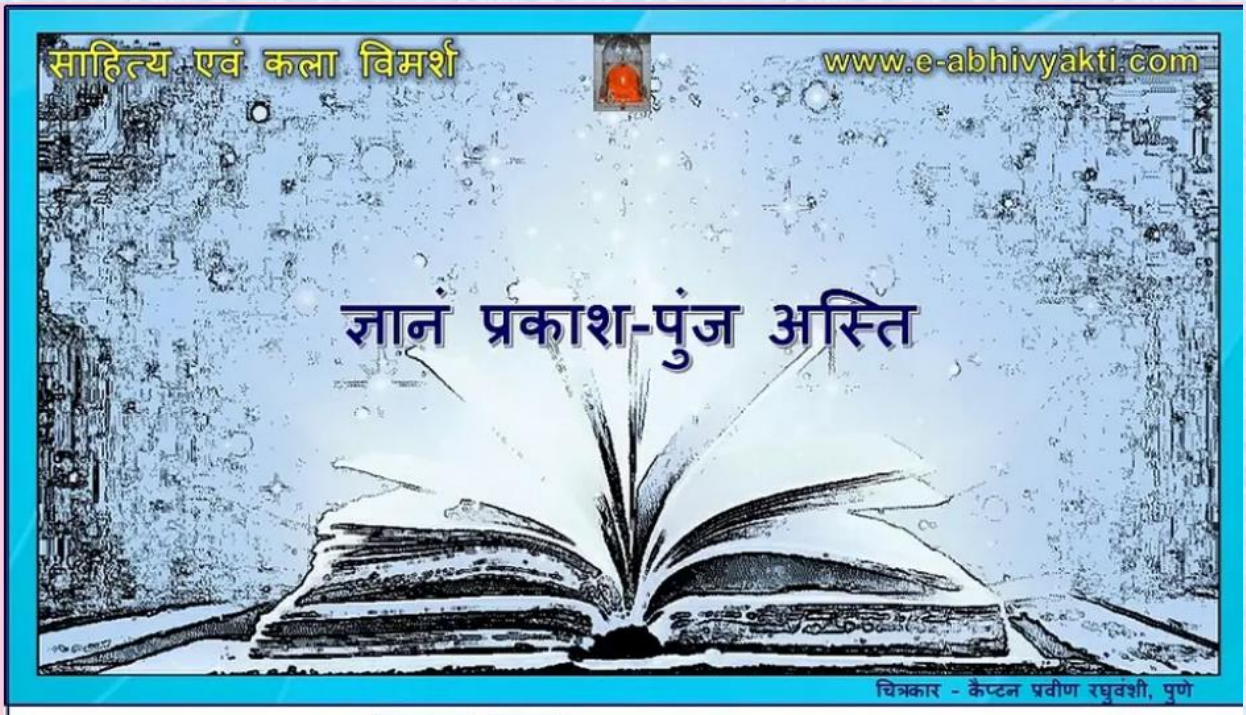

चित्रकार - कैप्टन प्रवीण रघुवंशी, पुणे

सम्पादक मण्डल

हिन्दी - श्री विवेक रंजन श्रीवास्तव, श्री जय प्रकाश पाण्डेय जबलपुर
अङ्ग्रेज़ी - कैप्टन प्रवीण रघुवंशी (नौसेना मैडल), पुणे
मराठी - श्रीमती उज्ज्वला केळकर, श्री सुहास रघुनाथ पंडित, सौ.मंजुषा मुळे, सौ.गौरी गाडेकर
अंतरराष्ट्रीय साहित्य एवं संस्कृति - डॉ राधिका पवार बावनकर, बाम्बेर्ग (जर्मनी)

सम्पादक
श्री हेमन्त बावनकर, पुणे

e-abhivyakti